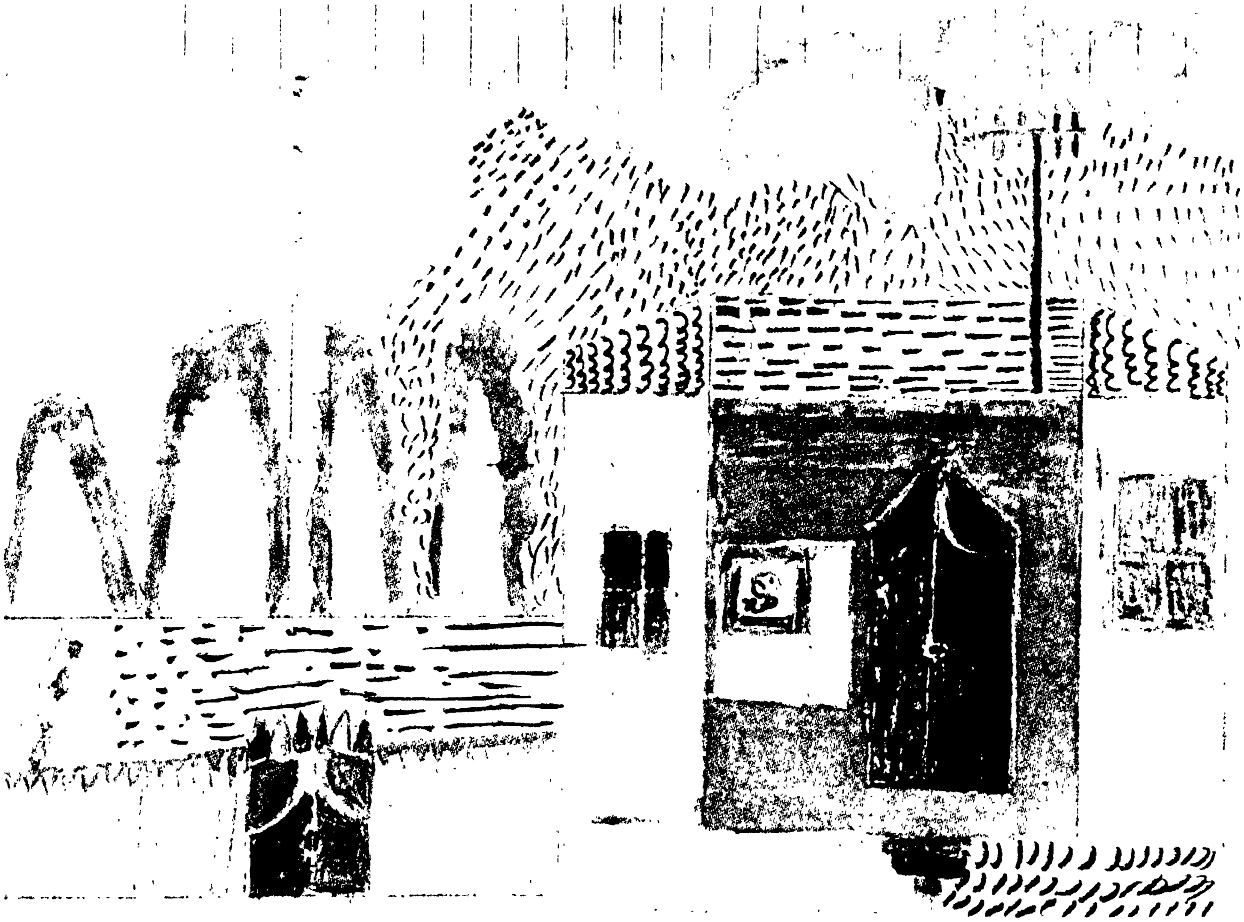

• नाम पता नहीं लिखा.

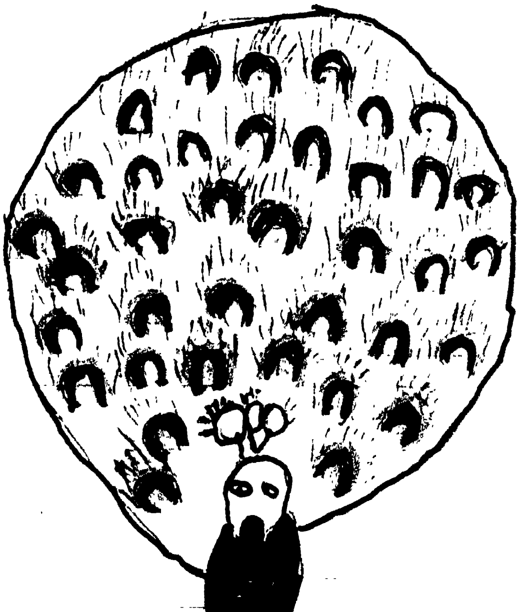

फरहद बानो. पाँचवीं. धार. म.प्र.

अक्षया शर्मा सातवीं भोपाल म प्र

एकलव्य का प्रकाशन

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका

सितम्बर, 2000 के 180 वें अंक में

विशेष

15 सितम्बर से सत्ताईसवें ओलम्पिक खेल शुरू होंगे ऑस्ट्रेलिया के शहर सिडनी में। तो पढ़ो ओलम्पिक खेलों के इतिहास की कुछ रोचक बातें, कुछ कहानियाँ। पेज 23 से।

हम अपने आसपास कितना-कुछ देखते हैं। कुछ हमें काम का लगता है कुछ फालतू। लेकिन इन फालतू चीज़ों से भी सुन्दर आकृतियाँ बना लेना कमाल की बात है। ऐसे ही कमाल करने वाले कलाकार थे गुरुजी। उनके बारे में पढ़ो पेज 3 से।

कहानी

16 मीठा हलुआ

कविता

19 मटकू की तरकीब

हर बार की तरह

2 इस बार की बात
29 वर्ग पहेली
38 माथापच्ची

धारावाहिक

33 प्यारा कुनबा : 7

और भी बहुत कुछ

13 गीत–संगीत : 2
14 तुम भी बनाओ : टोप
30 खेल –गीत: 10
32 खेल–खेल में : चिड़िया
40 खेल–खेल में कला

मेरा पन्ना

तुम्हारे पन्नों में तुम्हारी रचनाएँ और तुम्हारे चित्र : पृष्ठ 7 से 12 पर

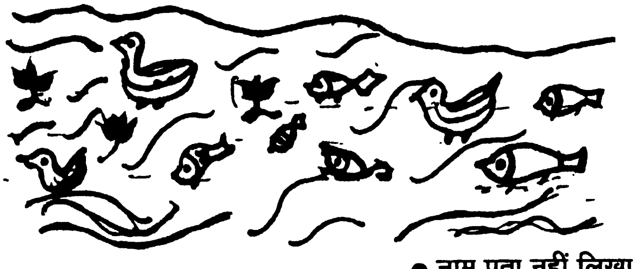

● नाम पता नहीं लिखा।

आवरण : गुरुजी की बनाई एक कलाकृति। पहचानो, गुरुजी ने इसमें क्या-क्या इस्तेमाल किया है

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यावसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

इस बार की बात . . .

यह सच भी है और झूठ भी कि **गुरुजी विष्णु दिनकर चिंचालकर** नहीं रहे। 30 जुलाई, 2000 की दोपहर इन्दौर में दिल का दौरा पड़ने से उनका निधन हो गया। लेकिन उनकी अनोखी कला दृष्टि अब भी जीवित है और सदा रहेगी।

5 सितम्बर शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है। सच्चे अर्थों में एक शिक्षक की ज़िन्दगी जीने वाले गुरुजी का जन्म भी 5 सितम्बर, 1917 को देवास ज़िले के ग्राम आलोट में हुआ था।

जन्म : 5 सितम्बर, 1917
निधन : 30 जुलाई, 2000
रेखांकन : मनोज कुलकर्णी

इन्दौर के चित्रकला मंदिर में उन्होंने विख्यात कला-गुरु श्री डी. डी. देवलालीकर से कला की प्रारम्भिक शिक्षा ली। 1941 में जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स, मुम्बई से कला की उपाधि प्राप्त की। कुछ समय तक वे देवास में स्कूल शिक्षक रहे। फिर इन्दौर के ललित कला महाविद्यालय में पढ़ाया भी।

गुरुजी के चित्रों की अनेक प्रदर्शनियाँ समय-समय पर आयोजित होती रही हैं। 1973 में उन्हें म.प्र. का राजकीय सम्मान तथा 1984 में शिखर सम्मान दिया गया। 1979 में एफ. आई. आई . फाउंडेशन (महाराष्ट्र) तथा 1985 में आईफैक्स सम्मान भी उन्हें मिला था।

गुरुजी ने कला के प्रति रुझान पैदा करने के लिए 'गुड फ्रायडे' नामक कला संस्था का भी गठन किया था। म. प्र. के अग्रणी हिन्दी अखबार 'नई दुनिया' से वे अंत तक जुड़े रहे। इसी अखबार में वे कई वर्षों तक बच्चों के लिए साप्ताहिक कॉलम लिखते रहे। इसमें वे बच्चों में रचनात्मक प्रतिभा को प्रोत्साहित करने के लिए चित्रकारी पर बात करते थे। 1967 में इन्दौर से बच्चों के लिए एक साप्ताहिक अख़बार निकलता था। गुरुजी इस अख़बार से भी जुड़े रहे। पिछले दो एक साल छोड़कर वे लगातार सक्रिय रहे।

इस शिक्षक दिवस पर प्रकृति के 'गुरुजी' को चकमक की विनम्र श्रद्धांजलि।

● चकमक

चकमक
मासिक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष-16 अंक-3 सितम्बर, 2000

सम्पादन	**वितरण**
विनोद रायना	कमल सिंह
राजेश उत्साही	मनोज निगम
कविता सुरेश	अशोक रोकड़े
टुलटुल विश्वास	**सहयोग**
विज्ञान परामर्श	राकेश खत्री
सुशील जोशी	सुशील शुक्ल

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता
एकलव्य
ई-1/25
अरेरा कॉलोनी,
भोपाल - 462 016
(म. प्र.)
फोन : 563380

कवर का काग़ज़ : यूनीसेफ के सौजन्य से

चंदे की दरें

एक प्रति :	10.00 रुपए
छमाही :	50.00 रुपए
वार्षिक :	100.00 रुपए
दो साल :	180.00 रुपए
तीन साल :	250.00 रुपए
आजीवन :	1000.00 रुपए

सभी में डाक ख़र्च हमारा

चंदा, मनीआर्डर/ड्रॉफ्ट/चेक से एकलव्य के नाम पर भेजें। भोपाल से बाहर के चेक में बैंक चार्ज 15.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

श्रद्धांजलि

एक खोजी कलाकार

चित्र : मनोज कुलकर्णी

गुरुजी विष्णु चिंचालकर का एकलव्य से बहुत पुराना रिश्ता है। लगभग पच्चीस साल पहले होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की पुस्तक बाल वैज्ञानिक कक्षा आठ का आवरण चित्र उन्होंने बनाया था। जब चकमक शुरू हुई तो गुरुजी सहज रूप से उससे जुड़ गए। 1986 में चकमक ने अपने नन्हें पाठकों से रचनाएँ आमंत्रित कीं। इनमें कविताएँ, कहानियाँ, निबंध और चित्र थे। चुनी हुई रचनाओं से एक अंक बनाया गया था जनवरी, 1987 का 'तुम्हारा अपना अंक'। रचनाओं के चयन के लिए जो अतिथि सम्पादक बुलाए गए उनमें गुरुजी भी थे। गुरुजी ने चित्रों का चयन किया था। चित्रों को लेकर गुरुजी की अपनी जो दृष्टि थी, उससे चकमक को भी एक नया आयाम मिला।

आए हुए ज़्यादातर चित्र नकल थे। यानी वे किसी कैलेण्डर, सीनरी या ड्राइंग बुक से देखकर बनाए गए थे। हम लोगों ने गुरुजी से इस बारे में बात की। पूछा, कि ऐसा क्यों होता है और बच्चों को चित्र बनाने के लिए क्या करना चाहिए। उन्होंने कुछ इस तरह समझाया –

''तुम अपने ऐसे साथियों को ज़रूर जानते होगे जो पाठ को रट लेते हैं और फिर किताब पर उँगली रख-रखकर ज़ोर से पढ़ते हैं। मगर उँगली किसी और लाइन पर होती है और बोलते हैं वह किसी और लाइन में। ऐसा ही कुछ इन चित्रों के साथ भी लगता है। ऐसे चित्र जब बनाए जाते हैं, तो उसमें रटी-रटाई झोपड़ी, खजूर के पेड़ या तिकोने पहाड़ आदि आ जाते हैं। तुम सोचोगे इसमें क्या गड़बड़ी है। अगर सच मानो तो इसमें बहुत बड़ी गड़बड़ी है। ऐसा करने से हम इन देखे हुए चित्रों के बँधे-बँधाए ढाँचे में फँस जाते हैं। ऐसे में हमारे पास करने को कुछ नहीं रह जाता। फिर यह चित्र हमारा कैसे हुआ?

तुम अपने आसपास के संसार को ज़रा ध्यान से देखो, उसमें ढेर सारी चीज़ें हैं। घर, सड़क, बाज़ार, नदी, नाला आदि जिन्हें तुम रोज़ाना देखते हो। जब चित्र बनाने बैठो तो क्यों न इनके ही चित्र बनाओ।

मान लो कि तुम्हें कोई चित्र बनाना है, अब यह ज़रूरी तो नहीं है कि कोई निश्चित विषय तुम्हारे सामने हो। तुम कुछ बनाना शुरू करते हो तो दो-चार लकीरें खींचने के बाद लगता है कि यह तो घर बन रहा है। घर तो तुमने बहुत देखे होंगे और वे सब एक जैसे नहीं होते। दूसरी बात, घर में क्या सामान और क्या काम होते हैं ये भी तुम्हें मालूम है। अब चित्र बनाते समय इनमें से कई चीज़ें तुम्हारे चित्र में आ जाएँगी। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे तुम मेले से लौटकर अपने दोस्तों को मेले के बारे में बताते हो।

अब बताने के पहले पूरा का पूरा सोचकर या रटकर तो नहीं रख लेते हो कि पहले यह बताओगे फिर यह। जो-जो तुम्हारे दिमाग में आता जाता है तुम बताते जाते हो। धीरे-धीरे मेले में देखे मदारी के खेल, झूला, चकरी, मिठाई, दुकानें, रोशनी, लोगों की चहल-पहल आदि के बारे में बताते हो। चित्र बनाते समय भी ऐसा ही होता है। अगर चित्र नकल किए हुए नहीं हैं तो वे तुम्हारे मेले के बारे में बताने के ढंग जैसे ही होंगे। चित्रों में आकार सब ठीक-ठाक बनें यह बिल्कुल ज़रूरी नहीं है। लेकिन यह तुम्हारा अपना चित्र होगा क्योंकि इसे तुमने सोच-सोचकर मन से बनाया है।''

गुरुजी की बताई हुई ये बातें आज भी चकमक के लिए मार्गदर्शन करती हैं। सच तो यह है कि चकमक में प्रकाशित होने वाले बच्चों के चित्र इसी कसौटी पर चुने जाते हैं।

गुरुजी चित्रकार तो थे ही, वे उसके भी आगे एक खोजी कलाकार थे। प्रकृति में छुपी तमाम आकृतियाँ ढूँढ लेना बहुतों ने उनसे सीखा। 'कबाड़ से कला' का नज़रिया गुरुजी की ही देन है। इस विधा पर लिखी उनकी एक संक्षिप्त टिप्पणी चकमक के जुलाई, 87 अंक में छपी थी, वह हम पुनः प्रकाशित कर रहे हैं। गुरुजी के साथ काम कर चुके कुछ साथियों के संस्मरण भी विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में दे रहे हैं।

सहज और सरल गुरुजी

दुबला-पतला शरीर, लम्बी गर्दन, भूरी-सी आँखें और झक्क सफेद दाढ़ी। खादी का कुर्ता-पाजामा।

हमारे मध्यप्रदेश के विख्यात चित्रकार श्री विष्णु चिंचालकर जिन्हें लोग गुरुजी कहा करते थे, दूर से पहचाने जा सकते थे। भारतीय चित्रकला में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले इन्दौर स्कूल ऑफ आर्ट के विद्यार्थी रहे गुरुजी सिर्फ चित्रकार भर नहीं थे। वे एक गम्भीर शिक्षक, सच्चे इन्सान और सामाजिक कार्यकर्त्ता भी थे। इतना सम्मान और इतनी उपलब्धियों के बावजूद उन्हें ज़रा-सा भी गर्व नहीं था, वे उतने ही सहज और सरल थे। बच्चों से लगाकर बड़ों तक, उनकी सभी से दोस्ती हो जाती थी।

हरी-पीली पत्तियाँ, सूखी टहनियाँ, आम की गुठलियाँ, पुरानी झाडू, टूटे-फूटे डिब्बे, दीवार पर पानी के धब्बे, कोनों में मकड़ी के जाले, फटे हुए कपड़े, जंग खाए ताले, टूटा हुआ चश्मा या चप्पल, ये कुछ भी गुरुजी के लिए फालतू या कबाड़ नहीं था। वे पलक झपकते ही इन वस्तुओं को किसी जाने-पहचाने आकार में बदल देते। टूटी कुर्सी की पीठ से गौतम बुद्ध, फटी बनियान से ईसा मसीह, ताले से गणेशजी या चप्पल से मोनालिसा।

गुरुजी का विश्वास था कि प्रकृति में कुछ भी फालतू नहीं है। प्रकृति अपने आकारों, अपने रंगों के माध्यम से हमसे बातें करती रहती है, ज़रूरत सिर्फ ध्यान देने की है।

बच्चों पर शिक्षा के नाम पर बोझ लादना उन्हें पसन्द नहीं था। उनका कहना था कि बच्चे को प्रकृति से बातें करने दो, खेल-खेल में वो सब सीख लेगा। मज़े-मज़े में बच्चों को अच्छी शिक्षा देने बाबत उन्होंने कुछ दिलचस्प प्रयोग भी किए थे।

चित्रकला के अलावा संगीत, नाटक और साहित्य में भी उनकी गहरी रुचि थी। वे अन्याय के विरूद्ध खुलकर खड़े होते थे।

गुरुजी अब हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी यादें और एक बड़े दोस्त की तरह बताई गई काम की बातें हमारे साथ सदा बनी रहेंगी। हम प्रकृति से जब-जब बातें करेंगे हमें गुरुजी याद आते रहेंगे।

● **मनोज कुलकर्णी, भोपाल**

बच्चों के बीच बच्चे

आज नहीं 14 साल पहले की बात है। गुरुजी से एक गतिविधि कार्यशाला में मुलाकात हुई थी। बच्चों के लिए विभिन्न गतिविधियों की यह कार्यशाला 'समावेश' नाम से एकलव्य देवास ने आयोजित की थी।

गुरुजी में न जाने क्या था कि मैं ही नहीं समूह के सभी सदस्यों को एक ही धुन सवार हो गई। वह धुन थी कि गुरुजी से सब कुछ सीख लें, बातें कर लें, उनके पिटारे को छूकर देखें, उसमें रखी आकृतियों को देखें। और देखें भर नहीं उन आकृतियों में जैसे घुस जाएँ। मज़ा तो खूब आया।

इतना ही नहीं कई बच्चों ने तो अपना मिशन ही बना लिया। जहाँ भी होंगे, चलते-फिरते या अन्य बच्चों के बीच गुरुजी द्वारा सीखी गई इस विद्या का प्रदर्शन ज़रूर करेंगे। हुआ भी यही। देखिए न! गतिविधि सम्बंधित जितने भी कार्यक्रम या कार्यशाला, बच्चों या

शिक्षकों के बीच होती हैं, उसमें इस तरह की गतिविधि का कोना ज़रूर होता है।

बच्चों के बीच बच्चे जैसा, बड़ों के बीच बड़ों जैसा बनकर अपने आपको समायोजित कर लेना और अपनी छाप छोड़ देना गुरुजी के लिए ही सम्भव था। ऐसे गुरुजी के साथ पिछले दशक में लगभग प्रत्येक वर्ष कुछ न कुछ काम करने का मौका मिलता रहा।

आदरणीय गुरुजी से बिछड़ने का दुख है, लेकिन उनकी यादें, गतिविधियाँ हमेशा बढ़ाती रहेंगी – बच्चों के साथ खेल-खेल में बहुत कुछ करते-करते।

● रविकान्त मिश्र, एकलव्य, देवास

बच्चों के गुरुजी

पहला दृश्य

गर्मी की चिलचिलाती धूप, चापड़ा (जिला देवास) में मैं और 'गुरुजी' दोपहर के बारह बजे चंद्रकेशर बाँध जाने वाली बस का इंतजार कर रहे हैं। वहाँ नवोदय विद्यालय में बच्चों के साथ कार्यशाला है। पसीना माथे से छलक रहा है। हाथ में पेटी जिसमें स्लाइड प्रोजेक्टर है। कंधे पर एक झोला जिसमें खादी का कुर्ता, पायजामा और ढेर सारा कूड़ा-कचरा! बस आती है। भयंकर भीड़, धक्का-मुक्की के बीच अपनी जगह बनाते हुए गुरुजी चढ़ जाते हैं। मुझे भी हाथ पकड़कर खींचते हैं और बस आगे बढ़ जाती है।

नवोदय विद्यालय पहुँचते ही बगैर पानी पिए सीधे पहुँच जाते हैं बच्चों के बीच में। उनके झोले में जो कूड़ा-कचरा था वह मानो कल्पनालोक की तरह जीवन्त हो उठता है। उसमें से मोनालिसा, बुड्ढे बाबा और अक्षरों की आकृतियाँ निकल पड़ती हैं। बच्चे खुश हैं, सारी कलाकृतियाँ बिखरी पड़ी हैं और गुरुजी बच्चों के बीच में घिरे बैठे हैं। वे एक-एक कृति के बारे में बताते हुए मुस्कुराते हैं। फिर एकाएक उठ खड़े होते हैं और निकल पड़ते हैं नवोदय विद्यालय के पीछे जंगल में बच्चों की टोली के साथ पत्तियों में आकृतियाँ ढूँढने!

दूसरा दृश्य

हाटपीपल्या के पास ग्राम देवगढ़ माध्यमिक विद्यालय में बाल मेला चल रहा है। आसपास के गाँवों के दो-तीन सौ बच्चे बाल मेले में विभिन्न गतिविधियाँ सीख रहे हैं, पर भीड़ लगी है एक कोने पर! कोने का नाम है 'पत्तियों का जादू'। यहाँ पर एक बुजुर्ग व्यक्ति हैं और ढेरों बच्चे उनके आसपास बैठे ध्यान से सुन रहे हैं। जो 'अ' अनार का और 'क' कमल का उन्हें पहचानने, लिखने, समझने में पसीना ला देता है, यहाँ वही 'अ' और 'क' ही नहीं बल्कि पूरी वर्णमाला याद हो गई। वर्णमाला में छुपे हुए विभिन्न आकार भी परिचित से लगने लगे। कौन हैं ये शिक्षाविद्! नहीं, ये तो खिचड़ी दाढ़ी में बच्चों-सी मुस्कान बिखेरने वाले गुरुजी हैं।

तीसरा दृश्य

गौरेया कुंज, संवाद नगर, इन्दौर (गुरुजी का निवास) में एक दोपहर – मैं अचानक पहुँचता हूँ। लोक जुम्बिश, डूंगरपुर (राजस्थान) में एक कार्यशाला और बाल मेले में गुरुजी को ले जाना है। वापस आते समय

रायपुरिया (झाबुआ) में 'सम्पर्क संस्था' में आदिवासी बच्चों के साथ एक बाल मेला करते आएँगे। देखता हूँ, गुरुजी बीमार नज़र आ रहे हैं। थोड़ी देर तो इधर-उधर की बातचीत, कला-कलाकार। नर्मदा बचाओ आंदोलन में बाबा आमटे से मिलकर आए थे गुरुजी। वही अनुभव सुना रहे थे। मैंने अपने मन की बात दबा ली। पर गुरुजी भला कहाँ चुप रहने वाले थे। बोले, 'हाँ, बोला कुठ चलायचं आहे' (हाँ, बोलो कहाँ चलना है)। मैंने कहा, 'गुरुजी, वो आपकी तबीयत...' मैं झिझक रहा था। वे बोले, 'अरे, मारो गोली तबीयत को! बच्चों के बीच जाऊँगा तो ठीक हो जाऊँगा। बस, यह पीठ की हड्डी तकलीफ देती है, टैक्सी कर लेंगे, पर चलेंगे ज़रूर।' मैं संकोच में पड़ गया, पर गुरुजी की हिम्मत लाजवाब, क्या जोश और क्या हिम्मत!

पिछले बारह वर्षों से मैं गुरुजी के सतत सम्पर्क में था। हमेशा हम लोग विकास कार्यों, बाल मेलों, शिक्षक प्रशिक्षणों के लिए गुरुजी की मदद लिया करते थे। शिक्षा को लेकर, सिखाने के नवाचारी तरीकों को लेकर गुरुजी की एक स्पष्ट और साफ दृष्टि थी। स्कूलों के अन्दर कैद बच्चों को देखकर वे बहुत दुखी रहा करते थे। वे कहते थे, 'जब तक प्रकृति से ये बच्चे नहीं जुड़ेंगे, जब तक जंगल-ज़मीन नहीं देखेंगे, तब तक ये रट्टू तोते से बनते जाएँगे और धीरे-धीरे प्रकृति से इनका अनुराग खत्म हो जाएगा।'

पी.यू.सी.एल. (जन अधिकारों के लिए संगठन), नर्मदा बचाओ आन्दोलन जैसे अनेक महत्वपूर्ण संगठनों में वे युवाओं को रास्ता दिखाते रहे। एकलव्य में 'चकमक' पत्रिका में बच्चों के चित्रों को लेकर उन्होंने हमेशा समझाया कि मौलिक चित्र बच्चों की अपनी समझ और अवलोकन के आधार पर बनते हैं। गुरुजी ने हजारों शिक्षकों, प्राध्यापकों और शिक्षाविदों को कला दृष्टि दी, शिक्षा का नज़रिया समझाया।

ऐसे गुरुजी का न होना, यह बात ही अविश्वसनीय लगती है। गुरुजी को श्रद्धांजलि।

● संदीप नाईक, देवास

मेरे गुरुजी

देवास ज़िले के हाटपीपल्या गाँव के एक स्कूल में बाल मेले के दौरान सर्वप्रथम गुरुजी से भेंट हुई। गुरुजी के बारे में सुना ज़रूर था, मगर मिलने का योग उस दिन हुआ। उसी दिन पहली बार उनके कामों को देखने का मौका भी मिला। गुरुजी की प्रेरणा से मेरी कला में चार चाँद लग गए।

लगातार गुरुजी के सम्पर्क में रहकर और उनके साथ काम करते-करते मैंने बहुत कुछ सीखा और समझा। गुरुजी ने भी बड़े ही सहज भाव से मुझे अपनी कला के बारे में बताया। कभी-कभार गुरुजी मुझे अपने साथ भी ले जाया करते थे। जिससे मुझे अपनी कला के बारे में लोगों के सामने बोलने की ताकत भी मिली। मुझे उनके साथ दिल्ली, भोपाल, इन्दौर, अलीराजपुर, देवास, उज्जैन जैसी जगहों पर काम करने का मौका मिला।

कोई छोटा हो या बड़ा, सभी के साथ गुरुजी एक-सा व्यवहार करते थे। वे सबसे बड़े ही सहज भाव से मिलते थे।

ऐसे महान व्यक्ति का इस दुनिया से चले जाना मध्यप्रदेश के कला जगत की बहुत बड़ी क्षति है। कुछ भी करना होता था तो मैं दौड़ा-दौड़ा उनके पास जाताथा। अब मार्गदर्शन, प्रेरणा के लिए किसके पास जाऊँगा। उनकी याद आती है तो लगता है, मानो अभी वे ज़िंदा हैं। ऐसे गुरुजी को उनका कोई शिष्य कभी भुला नहीं सकता।

● प्रेम मनमौजी, एकलव्य, उज्जैन

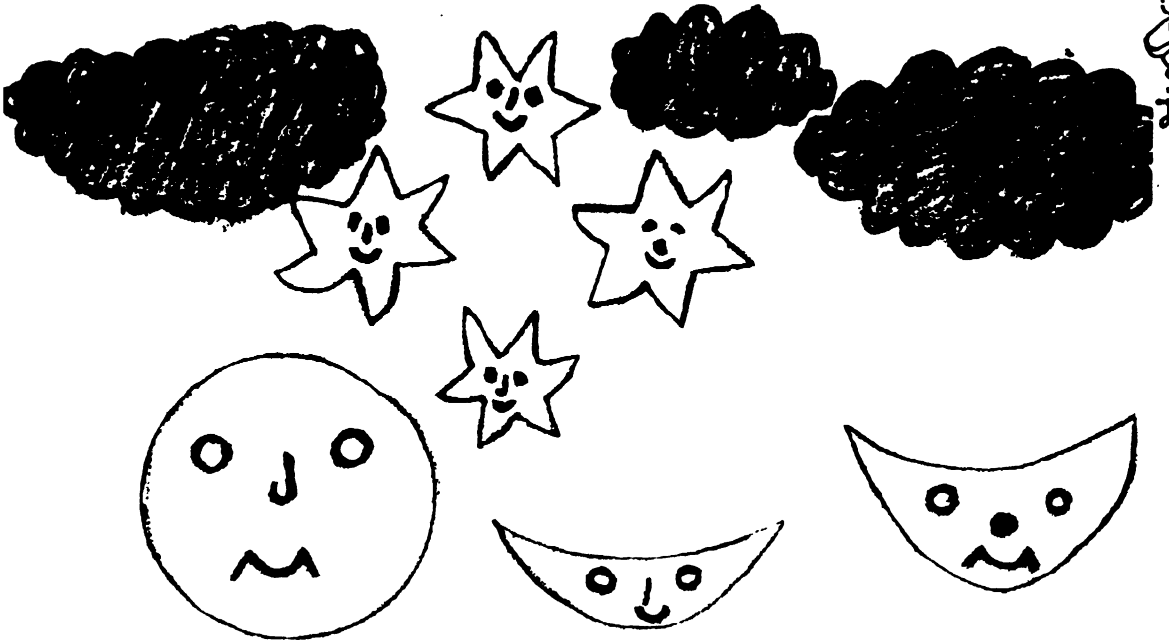

तारे

तारे देखो कितने सारे,
आसमान में बिखरे सारे,
रोज चाँद के साथ हैं आते,
सूरज आते ही छिप जाते।
बारिश का मौसम आता,
आँख मिचौली खेलें तारे
चंदा मामा जब नहीं आते,
रोते हैं ये सारे तारे।
चंदा मामा जब हैं आते
खुशियों से ये खेलें सारे।
एक दिन मुनिया मुझसे बोली,
दीदी गिन ले सारे तारे।

● एंजिला विक्टर, सातवीं, धार, म.प्र.

चंदा मामा

चंदा मामा चंदा मामा,
तुम रात में ही दिखलाई देते हो,
वो भी तारों के संग।
तारे झिलमिलाते हैं,
और तुम उनको देखकर हँसते हो,
वो भी तुमको देखकर हँसते हैं,
पर वह तुम से उदास रहते हैं।
कभी-कभी तुम
आधी रात को आते हो,
तुम सदा अपना रूप बदलते हो,
कभी पूरे गोल हो जाते हो,
कभी आधे और कभी
नाखून से हो जाते हो।

● चित्र और कविता : फरीदा, दूसरी, फैजाबाद, उ.प्र.

मेरा पन्ना

फूल का जीवन

''गमले ले लो, गमले। फूलों के पौधों वाले गमले ले लो। बहन जी गुलाब ले लो। चमेली ले लो।'' आवाज़ आई तो मैं बाहर देखने गया। एक आदमी फूलों के पौधों वाले गमले बेच रहा था। मैंने मम्मी से जिद करके एक गुलाब के पौधे वाला गमला ले लिया। उसे आँगन में रख दिया। अभी पौधा छोटा ही था।

कुछ दिनों बाद उस पर एक छोटी-सी कली ने जन्म लिया। मैं रोज़ पौधे को पानी देता और उसके बढ़ने की कामना करता। धीरे-धीरे वो कली फटने लगी। उसमें से सुन्दर गुलाब का लाल रंग का फूल निकलने लगा था।

कुछ दिनों में वह कली एक फूल बन गई। दिन भर हवा के हिलौरे भरता वह फूल एक नई ताजगी प्रदान करता।

एक दिन मैं जब खेलने चला गया तो आकर देखा कि वो फूल पौधे से गिरकर टूट गया था। मैंने उसे उठाकर अपनी किताब में रख लिया। पर मन उदास हो गया। जब शाम को मैं गुलाब के पौधे को पानी देने लगा तो मैंने उस पौधे पर चार-पाँच कलियाँ देखीं। उदास मन खुश हो उठा। और उनके फूल बनने का इंतज़ार करने लगा।

● नकुल कुन्दरा,
जालन्धर, पंजाब

● चित्र : सोनम, छठवीं, नई दिल्ली

कुएँ का सर्प

एक दिन की बात है कि मैं अपने दोस्त के कुएँ पर गया था। कुएँ के पास हम बैठने के लिए एक चबूतरा बना रहे थे। हम लोग थोड़ा-सा ही चबूतरा बना पाए और पानी गिरने की सम्भावना हो गई। ज्ञानचन्द्र बोला चलो, अब इस चबूतरे को सुबह आकर बनाएँगे। क्योंकि यदि रात में पानी गिर गया तो हमारी सब मेहनत बेकार जाएगी। तो हम लोगों ने कहा, कि चलो अब हम सब नहा लेते हैं। सब दोस्तों ने कहा, हाँ चलो। हम लोग चले गए। कुएँ के पास नहाने के लिए बाल्टी रखी हुई थी। जो कि खराब थी। इस कारण हमने कहा, चलो कुएँ में जाकर नहा लेते हैं। क्योंकि हम चारों लोग तैरना जानते थे। हम लोग कुएँ में चले गए। जाकर के तैरने लगे। मैंने सोचा कि क्यों न मैं डूब के इस कुएँ को पार कर लूँ। तो मैं डूबकर तैरने लगा। मुझे कुएँ में एक सर्प मिला। मैं झट से कुएँ के बाहर आया और कहा अब मैं कभी कुएँ में नहीं जाऊँगा।

● कोमल लोधी, आठवीं, छतरपुर, म.प्र.

● भानूप्रताप राठिया, आठवीं, कटाईपाली, रायगढ़, म. प्र.

देखो आई है बरसात

देखो आई है बरसात।
झड़ी लगी है दिन-रात
अब गिलकी, लौकी की बेल
प्रबल हो तूम्बे की बेल।
ककड़ी बड़ी, करेले न्यारे।
भुट्टे आते है घनसारे
नदी-नाले भर जाते हैं
कूड़ा-करकट ले जाते हैं
झड़ी लगी है दिन-रात
देखो आई है बरसात।

लोग खुशी-खुशी से आते
नदियों में नहाकर जाते
लहराने लगती हैं फसलें
खिल उठते किसानों के सपने।
किसान अब फूला न समाया
खेतों में मुस्कुराकर आया
देखो आई है बरसात।
झड़ी लगी है दिन-रात

● सरला भीमराव वानखेड़े, नवमीं, खण्डवा, म.प्र.

बरखा आई

काले काले बादल आए
ढोल बजाते बादल आए
ठण्डा ठण्डा पानी बरसा
मेंढक फुदकने लगे
मछली नाचने लगी
तालाब पानी से भर गया है
खेतों में हरियाली छाई
बरखा आई बरखा आई।

● बनवारी, तीसरी, जयपुर, राजस्थान

टन टन टन टन

टन टन टन टन टेलीफोन
हैलो बोल रहा ये कौन
ये तो मम्मी की आवाज
मम्मी तुम हो क्यों नाराज
अभी चलेंगे हम बाजार
लड्डू लाएँगे ढेर हजार

● मनु शर्मा, छह वर्ष, लखनऊ, उ. प्र.

मेरा पन्ना

मेरी सहेली सुनीता

बहुत पहले की बात है हम दोनों सहेली साथ-साथ स्कूल जाते थे। एक दिन स्कूल में सर पाठ पढ़ा रहे थे। मैं पुस्तक घर छोड़ गई थी। तो मेरी सहेली सुनीता ने सर से कह दी कि सर इसने पुस्तक नहीं लाई। तो गुरुजी ने मुझे दो रूल, दोनों हाथ में मारे। जब से हम दोनों ने एक दूसरे से बात नहीं करी।

फिर जब स्कूल में सुनीता मुझसे पेन माँग रही थी तो मैंने उसे नहीं दी। मेरी मम्मी को यह बात पता नहीं थी कि दोनों एक दूसरे से बात नहीं करती। उसने उसके जन्मदिन पर बुलाया तो भी मैं नहीं गई। हम दोनों की दूसरी सहेली भी नहीं है। मेरी तो अभी भी सहेली नहीं है। लगभग 5 साल तक एक दूसरे से नहीं बोले, हमने वादा किया था कि कभी भी हम एक दूसरे की बात किसी से नहीं कहेंगे।

एक दिन सुनीता मुझे उसके खेत में बटाने की फली खिलाने ले गई थी। उसके खेत में बेर भी थे। मुझे बेर खाने का बहुत ही शौक था। बेर खाने के लिए पेड़ पर चढ़ गई। मैं पेड़ से ऐसी बुरी गिरी की एक हाथ टूट गया।

सुनीता को मेरी मम्मी ने कहा, कि तुम मेरी लड़की को क्यों ले गई। मेरी मम्मी सुनीता से बहुत लड़ी। मेरी सहेली मुझसे नहीं बोलती है। जबसे मैंने अभी तक बेर नहीं खाए।

● प्रतिभा राठौर, आठवीं, चारुआ, हरदा, म. प्र.

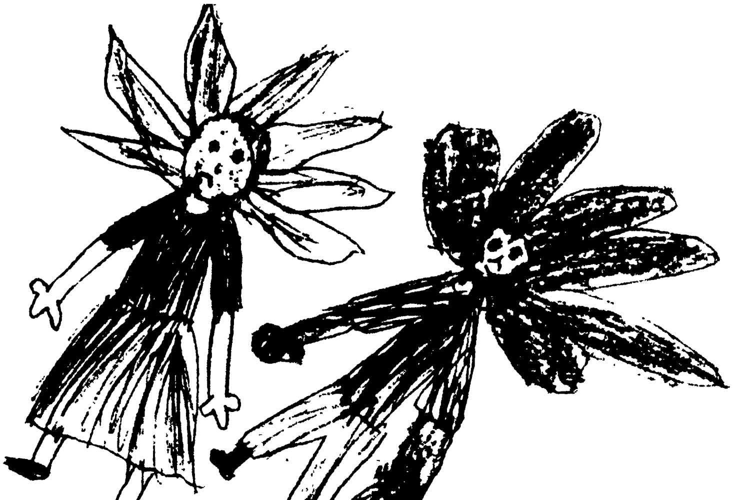

तितली

लगती बड़ी न्यारी तितली
रंग-रंग की होती तितली
आकाश में है उड़ती तितली
लगती बड़ी न्यारी तितली

एक-एक फूल चुनती तितली
फूलों पर मंडराती तितली
पकड़ो तो रंग छोड़ जाती तितली
लगती बड़ी न्यारी तितली

● अपाला मिश्र, पाँच वर्ष, देहरादून, उ. प्र.

● गौरव कुमार, आठवीं, अल्मोड़ा, उ. प्र.

मेरा पन्ना

पहेलियाँ

1

फल-फूल दोनों से मिलकर बनी है यह चीज़,
जो खाने व स्वाद में हरदम लगती लजीज।

2

धूप में पलती हूँ,
छाया देखकर मरती हूँ।
सूरज के आगे रहती हूँ।

3

एक प्लेट में बारह अण्डे,
और तीन चमचे।

4

कभी हँसाती, कभी रूलाती,
तो कभी है नचाती।
क्या है वह चीज़
जो हम सबको भाती।

5

एक गेट है
जिसे हम पार नहीं कर सकते।

6

लोहे का बिच्छु, पीतल का डंक,
लग जाए डंक तो निकले लाल रंग।

7

दाँत हैं
मगर खा नहीं सकता,

● निर्मल आदिवासी दसवीं

8

खाते नहीं पकाते लोग
कंठ में कड़वा रस का योग
जीव दाँत की करे सफाई
बूझो कौन सी चीज़ है भाई

● प्रमोद मालवीय, सातवीं,
बैराखेड़ी, म. प्र.

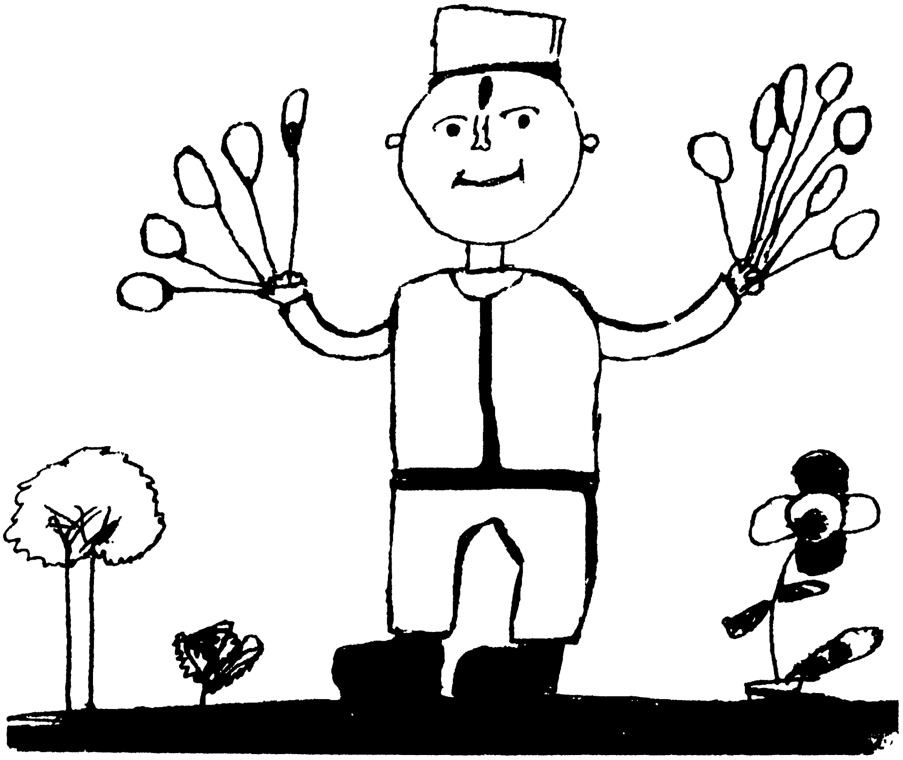

पंकज चौहान, छठवीं, देवास, म. प्र.

मेरा पन्ना

तिलचट्टा

मेरे घर में हट्टा-कट्टा
रहता है एक तिलचट्टा।

तेज़ रोशनी में घबराता,
मगर अंधेरा इसको भाता।
झूठन और गंदगी खाता,
मूँछ हिलाकर मौज मनाता।
अगर ऊब जाता घर में तो,
सैर-सपाटा कर आता।

एक नहीं, दो नहीं, चार नहीं,
छः पैरों पर इतराता।
यूँ तो रोज़ भागता है पर,
हल्का-फुल्का उड़ भी पाता।
अगर भगाओ, छिप-छिप जाता।
मम्मी इसे बुरा कहतीं हैं,
एक दिन मारा सिलबट्टा।

मेरे घर में हट्टा-कट्टा,
रहता है एक तिलचट्टा।

● दिव्या गुमास्ता, भोपाल, म. प्र.

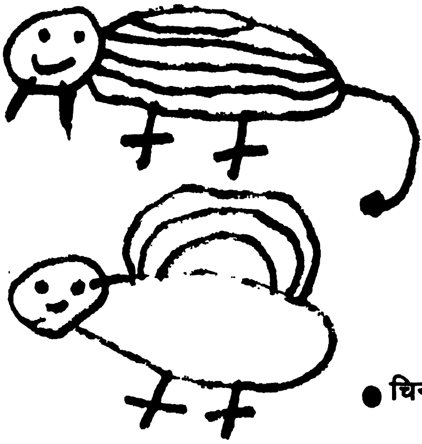

● चिन्ना फिलोमिना, भोपाल, म. प्र.

मुर्गा बेच दिया

मेरे अब्बा एक मदरसा चलाते हैं। मदरसे में अरबी उर्दू के साथ-साथ हिन्दी, गणित और अन्य विषय भी पढ़ाते हैं। हमारे मदरसे में मुर्गी पालन करने वालों के बच्चे भी पढ़ने आते हैं। उनसे मुझे मालूम हुआ कि उनके यहाँ अण्डों से बच्चे निकल आएँ हैं और एक चूज़ा ढाई रुपए का है। मैं अपने अब्बा से कहे बगैर, अम्मी से पाँच रुपए और एक डिब्बा लेकर अण्डे वालों के यहाँ चूज़े लेने गया।

मेरे अब्बा को जब यह मालूम हुआ तो वे बहुत गुस्सा हुए और अण्डे वाले के यहाँ पहुँचे। मैं दूसरे रास्ते से घर आ गया। घर आकर उन्होंने मेरी पिटाई की। चूज़े वापस ले जाने को कहा। हमारे पड़ोसी ने यह देखकर दोनों चूज़े रख लिए और पाँच रुपए देकर शान्ति की।

हमारे पड़ोसी के यहाँ एक चूज़ा मर गया। उन्हें अपना मकान छोड़ना था। दूसरा मकान मालिक ब्राह्मण था। वह अण्डे, मुर्गी, माँस, मछली खाने वालों को मकान किराए पर नहीं देता था। इसलिए पड़ोसी वह चूज़ा मुझे मुफ्त में देकर चले गए। मैं बहुत खुश हुआ और अब्बा का पता नहीं कि वह खुश हुए या नाराज़। मुझे लगता है कि वह नाराज़ हुए होंगे।

अब मैं, मेरा छोटा भाई और मेरी अम्मी रोज़ाना उसको दाना पानी साफ-सफाई करते। इस तरह छह महीने हो गए। अब चूज़ा बड़ा हो गया।

हम सबको शादी में जाना था। सब सोचने लगे कि मुर्गे का क्या करें। पास-पड़ोस वाले भी शादी में जा रहे थे। तो मेरे पापा उसे पास के हाट बाजार में ले गए और पचास रुपए में बेच दिया। मुझे उसका बहुत दुख है।

● हबीब अनवर राही, आठवीं, नीमच, म. प्र.

हम लाए हैं तूफान से...

कवि प्रदीप

गीत-संगीत की इस श्रृंखला में इस बार हम 'जागृति' फिल्म का एक गीत लाए हैं।

सन् 1950 के दशक में फिल्म बनाने वाली कम्पनियों में 'फिल्मिस्तान' का बहुत नाम था। इस कम्पनी के बैनर तले चल-चल रे नौजवान, शहीद, नागिन, अनारकली, दुर्गेशनंदिनी, सरगम, मुनीम जी, पेइंग गेस्ट, दो भाई, नास्तिक और जागृति जैसी कई हिट फिल्में बनीं।

1954 में बनी 'जागृति' एक स्कूल मास्टर की कहानी थी। मास्टर बने थे – अभि भट्टाचार्य, जो बाद में चरित्र अभिनेता के रूप में लोकप्रिय हुए। फिल्म में मास्टर जी पढ़ाई के परम्परागत तरीकों को छोड़कर नए-नए तरीके आजमाते हैं। अपने छात्रों को वे भ्रमण पर ले जाते हैं, उनके साथ खेलते हैं, गीत गाते हैं। लेकिन बहुत से लोगों को यह सब ठीक नहीं लगता। नौबत यहाँ तक आती है कि मास्टर जी की नौकरी चली जाती है।

'जागृति' के गीत कवि प्रदीप ने लिखे थे। फिल्म के तीन गीत बहुत मशहूर हुए। एक गाँधीजी पर है – *साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल*, दूसरा है – *आओ बच्चो तुम्हें दिखाएँ झाँकी हिन्दुस्तान की*। तीसरा गीत यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। इसे मोहम्मद रफी ने गाया है और संगीत दिया है हेमंत कुमार ने।

मोहम्मद रफी

हम लाए हैं तूफान से कश्ती निकाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चो सँभाल के
तुम ही भविष्य हो मेरे भारत विशाल के

देखो कहीं बरबाद न होवे ये बगीचा
इसको हृदय के खून से है बापू ने सींचा
रखा है ये चिराग शहीदों ने बाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चो...

दुनिया के दाँव-पेंच से रखना ना वास्ता
मंजिल तुम्हारी दूर है लम्बा है रास्ता
भटका न दे तुम्हें कोई धोखे में डाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चो...

एटम बमों के ज़ोर पे ऐंठी है ये दुनिया
बारूद के एक ढेर पे बैठी है ये दुनिया
तुम हर कदम उठाना ज़रा देख भाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चो...

आराम की तुम भूल-भुलैयाँ में न भूलो
सपनों के हिंडोलों पे मगन होके न झूलो
अब वक्त आ गया है मेरे हँसते हुए फूलो
उठ्ठो छलांग मार के आकाश को छू लो
तुम गाड़ दो गगन पे तिरंगा उछाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चो...

फिल्म : जागृति **गायक : मोहम्मद रफी**
गीतकार : प्रदीप **संगीतकार : हेमंत कुमार**

फिल्म जागृति के एक दृश्य में अभि भट्टाचार्य और एक बाल कलाकार।

टोप

तुम लोग अक्सर जब स्कूल में नाटक करते हो या किसी कार्यक्रम में भाग लेते हो तब कई ऐसी चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है जो कि हम रोज़मर्रा में इस्तेमाल नहीं करते। और ऐसी चीज़ें खरीदना, वो भी सिर्फ एक दिन के इस्तेमाल के लिए, काफी महँगा पड़ता है। ऐसी चीज़ें अगर हम किसी जुगाड़ से बना लें तो सस्ता तो पड़ता ही है, कार्यक्रम का मज़ा भी दुगना हो जाता है। यहाँ हम ऐसे ही एक टोप के बारे में बता रहे हैं। बहुत आसान है इसे बनाना। तो बनाओ और किसी नाटक में इस्तेमाल करो तो हमें भी बताना।

इसके लिए मोटा कागज़, कैंची, गोंद या फेवीकॉल इकट्ठा कर लो।

सबसे पहले कागज़ की एक लम्बी पट्टी लो। यह पट्टी लगभग 8 से 10 सेंटीमीटर चौड़ी हो।

इस पट्टी को अपने सिर पर लपेटकर देखो। तुम्हारे सिर के नाप की पट्टी काट लो। इसको गोंद या फेवीकॉल से चिपका दो। (**चित्र–1**) यह बन गया तुम्हारे सिर के नाप का छल्ला।

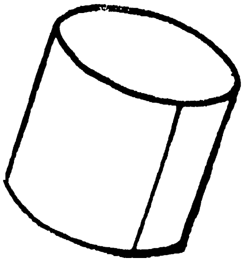

चित्र–1

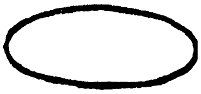

चित्र–2

अब कागज़ से इस नाप का एक गोला काटो (**चित्र–2**)।

इस गोले को तुम्हारे सिर के नाप के छल्ले के एक ओर फेवीकॉल से चिपका दो (**चित्र–3**)। अगर हो सके तो इसे चिपकाने के लिए टेप का इस्तेमाल करो।

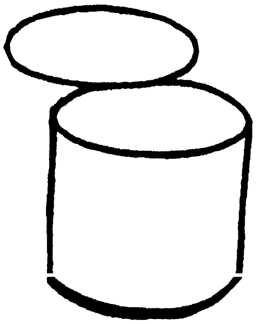

चित्र–3

अब छल्ले के नाप से थोड़ा बड़ा कागज़ का एक रिंग काटना है। इसके लिए कागज़ की शीट पर छल्ले के आकार का गोल निशान बनाओ। फिर दूसरा उससे लगभग 2 या 3 सेंटीमीटर आगे बढ़ाकर निशान बनाओ। (**चित्र**–4)

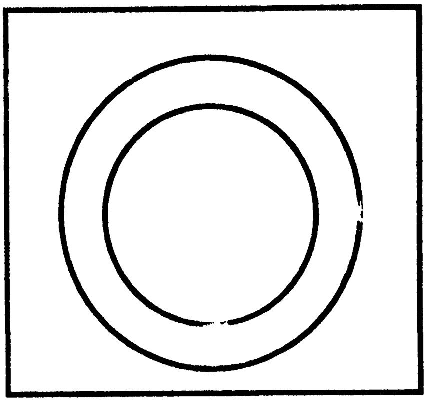

चित्र–4

फिर छल्ले को अलग रख दो। बड़े वाले गोले को कागज़ से काटकर अलग कर लो। और छोटे गोले को भी उसमें से काटकर अलग कर दो।

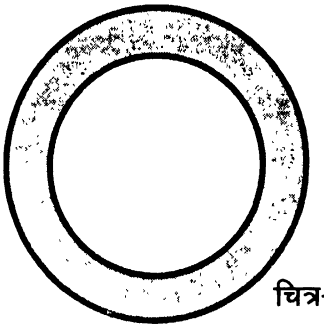

चित्र–5

अब तुम्हें जो कागज़ का गोल रिंग मिल गया है। (**चित्र**–5) उसे छल्ले के दूसरी ओर चिपका लो। इसे चिपकाने के लिए फेवीकॉल या टेप का इस्तेमाल करोगे तो ये अच्छे से चिपकेगा।

टोप बन गया। अब इसे पहनकर देख लो, तुम्हारे सिर में ठीक से आता है कि नहीं। (**चित्र**–6)

यह टोप तुम जिस रंग का बनाना चाहो उसी रंग का कागज़ लेकर बनाओ। अगर चाहो तो टोप बनाने के बाद उस पर मन चाहे रंग का कागज़ चिपका लो।

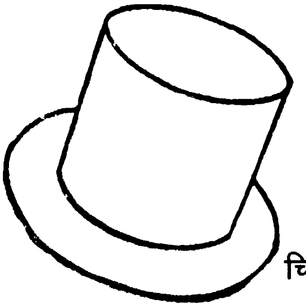

चित्र–6

इसे करके देखो

कोई भी तीन अंकों की सख्या लो।
अब इसके अंकों को पलट लो।
अब बड़ी संख्या में से छोटी संख्या को घटा दो।
अब जो संख्या आई उसे उलट लो।
अब इन दोनों को जोड़ लो।
उत्तर तो 1089 ही आएगा है न!
अब तुम कोई भी संख्या लेकर यह प्रक्रिया दोहराओ।

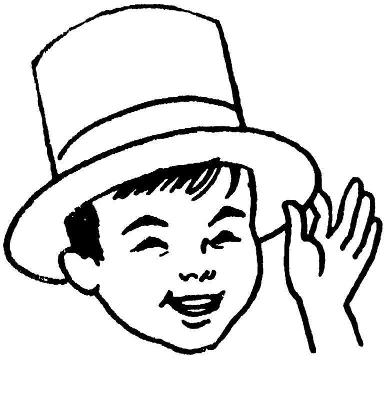

कहानी

मीठा हलुआ

बहुत दिन बीते एक लड़की अपनी माँ के साथ बहुत गरीबी की हालत में रहती थी। उसके पिता नहीं थे। एक दिन जब उनके पास खाने को कुछ नहीं बचा, तो लड़की जंगल में गई।

लड़की ने सोचा, 'शायद मुझे जंगल में कुछ बीही या बेर मिल जाएँ। या हो सकता है जंगल की परी मुझे वह बर्तन ही दे दे, जिसमें खाना पकता ही जाता है -- पकता ही जाता है, कभी खत्म नहीं होता।'

जंगल में उसे बीही या बेर तो नहीं मिले, पर परी ज़रूर मिल गई। लड़की ने परी को अपनी समस्या बताई। परी ने लड़की को एक कड़ाही दी और कहा, "जब तुम कहोगी, 'कड़ाही गर्म हो जा' ; तो यह कड़ाही हलुआ बनाना शुरू कर देगी। जितना तुम चाहो। तुम्हें इसमें कुछ डालना नहीं पड़ेगा। हलुआ बनना तब तक बन्द नहीं होगा, जब तक कि तुम 'बस करो कड़ाही' न कहो।"

लड़की बहुत खुश हुई। हलुआ उसे बहुत पसन्द था। परी ने उसे याद दिलाया, "बन्द करने का संकेत मत भूलना।" लड़की ने कहा, "नहीं भूलूँगी।" वह कड़ाही घर ले गई। उसकी माँ भी बहुत खुश हुई। क्योंकि हलुए से भी पेट भर जाता है। अब उन्हें कम से कम हलुआ तो मिलता ही रहेगा।

अब उनका पेट हमेशा भरा रहता, तो उनकी दूसरी इच्छाएँ होने लगीं। माँ की इच्छा शादी कर लेने की हुई। कहावत है कि, 'जहाँ दो का चले, वहाँ तीसरा भी पले।' यह सोचकर माँ ने शादी कर ली।

जब तक वे चाहते, कड़ाही गर्म रहती। धीरे-धीरे लड़की की इच्छा भी शादी की होने लगी। उसने सोचा, 'जहाँ तीन का चले, वहाँ चौथा भी पले।' और लड़की ने भी शादी कर ली।

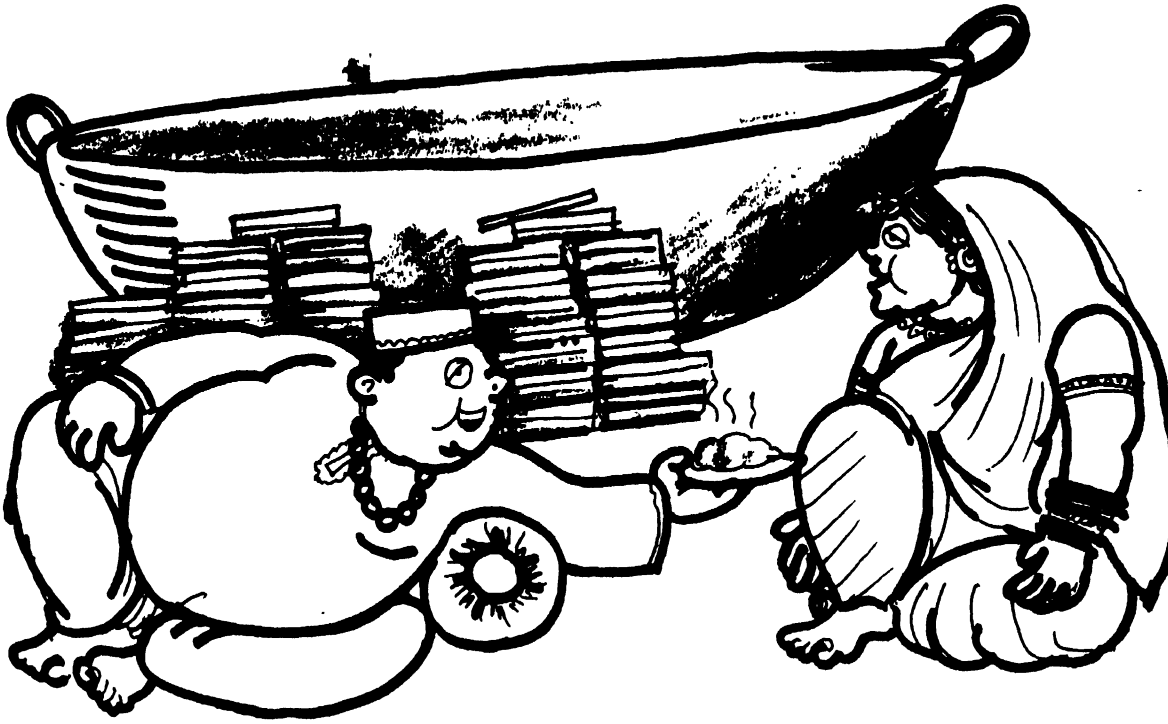

चारों के पास खूब खाने को था। वे जब तक चाहते, कड़ाही पकाती थी।

कुछ दिनों बाद माँ के पति ने कहा, "हम जितना चाहें उतना हलुआ बना सकते हैं। परन्तु अफसोस की बात है कि हम बनाते नहीं। क्योंकि हमारे पेट तो भरे रहते हैं। पर पेट भरे रहने से ही सब कुछ नहीं होता। हमें अन्य चीज़ों के लिए भी पैसा चाहिए। हमें हलुआ बेचना भी चाहिए।"

उन्होंने हलुआ बेचना शुरू कर दिया। हलुआ मीठा और स्वादिष्ट भी था। बाद में उन्हें पता चला कि जिसे जैसा पसंद होता था उसे यह हलुआ वैसा ही लगता था - इसलिए खूब बिका।

कड़ाही पकाती रही, पकाती रही।

"यह कड़ाही तो सोने की खदान है।" लड़की के पति ने कहा। "हमें डिब्बाबंद हलुआ फैक्ट्री शुरू कर देना चाहिए। हम डिब्बाबंद हलुए के खोके हर जगह भेजेंगे। इससे हम धनवान हो जाएँगे।"

यही किया गया। उन्होंने कड़ाही को दिन-रात गर्म रखकर हलुआ शहर, देश और विदेश में भेजना शुरू कर दिया। वे मालामाल होते गए।

उन्होंने पहले एक फैक्ट्री बनाई। फिर खुद के लिए एक महल बनवाया। उसमें हर तरह की सुविधा थी। गर्मी में ठंडा और ठंड में गर्म। पक्की छतें। संगमरमर का फर्श। उन्होंने अफगानी कालीन खरीदे और हरेक के लिए झूलेनुमा

कुर्सी, कश्मीरी गद्दे और चिकना फर्नीचर बनवाया। नए से नए फैशन के कपड़े सिलवाए। नरम तकिए भरवाए और हर चीज़ जो वे चाहते थे। जब महल छोटा पड़ने लगा, तो उन्होंने एक और बनवा लिया।

अब उन चारों के पास एक-एक गाड़ी भी थी।

जब उनके पास सब कुछ हो गया तो वे समय बिताने के लिए गोल्फ और ताश खेलने लगे। वे नाटक-सिनेमा वगैरह में जाते और कड़ाही को गर्म होते रहने के लिए छोड़ जाते। दो आदमी हलुए को डिब्बों में भरते और तीन आदमी उन्हें खोकों में जमाकर ट्रक पर चढ़ाते।

जल्दी ही उन्होंने एक घर मालाबार और एक कश्मीर में खरीदा। उन्होंने एक बंगला टिम्बकटू में खरीदा। उन्होंने एक प्लॉट अमरीका और एक इंग्लैण्ड में खरीदा।

और कड़ाही गर्म की गर्म रही। परन्तु एक दिन ऐसा आया जब दुनिया में हरेक के पास पर्याप्त हलुआ हो गया। एक दिन चारों बैठक में चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे और काजू कुतर रहे थे। अचानक कमरे में हलुआ भरने लगा।

सबसे पहले लड़की को अपनी पीठ पर कुछ गरम-गरम लगा। हलुए से दरवाज़ा भर गया था और अब यह खिड़कियों में से घुसने लगा था।

"कोई बात नहीं," लड़की ने कहा। "हम जादुई संकेत बोलेंगे और हलुआ बनना बन्द हो जाएगा।"

"तो बोलो", उसके पति ने कहा, "तुम्हीं बोलो, तुम्हारी कड़ाही है। जल्दी करो, मेरे जूते में हलुआ भरा जा रहा है।"

"बन्द हो जाओ कड़ाही", लड़की ने कहा। परन्तु यह सही संकेत नहीं था। "कड़ाही, कड़ाही बहुत हो गया।" परन्तु यह भी सही नहीं था।

जादुई संकेत इतना आसान था कि किसी को याद नहीं आ रहा था। न लड़की को, न माँ को, न बाकी दोनों को। पर कड़ाही हलुआ उगले जा रही थी।

क्या तुम्हें याद है?

(एक जर्मन लोककथा पर आधारित)
मूल लेखक - जैनॉश
अंग्रेज़ी से अनुवाद : सुशील जोशी
चित्र : अमित सिन्हा

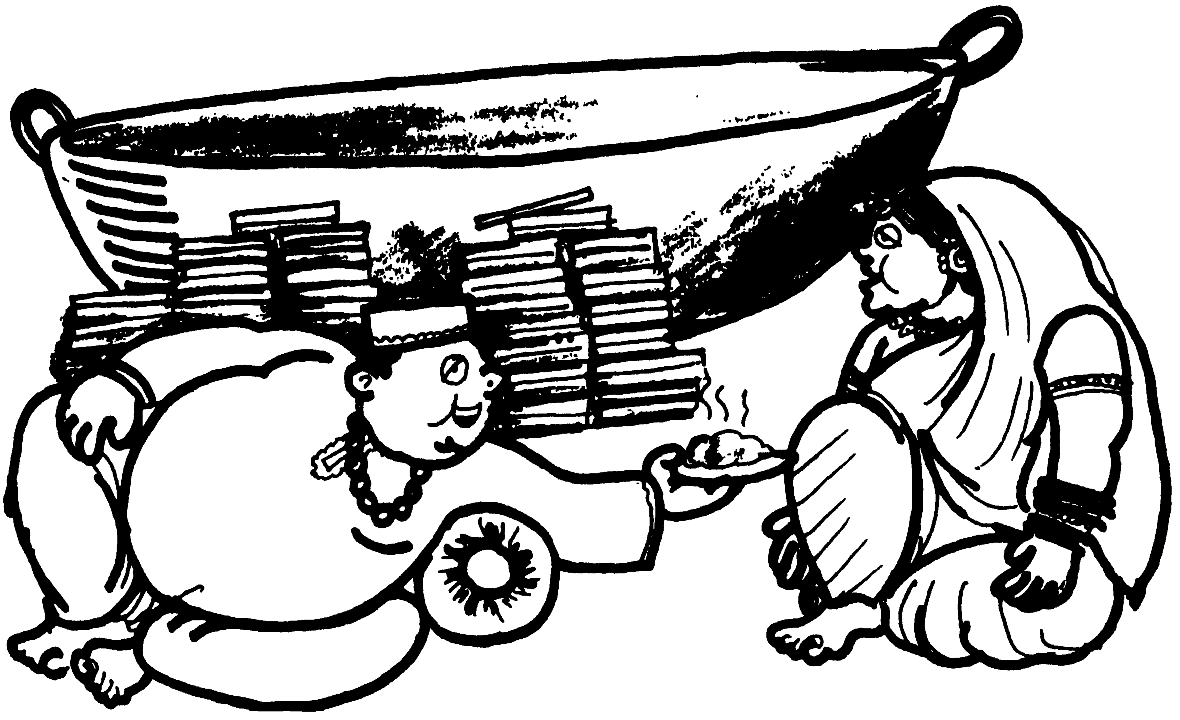

चारों के पास खूब खाने को था। वे जब तक चाहते, कड़ाही पकाती थी।

कुछ दिनों बाद माँ के पति ने कहा, "हम जितना चाहें उतना हलुआ बना सकते हैं। परन्तु अफसोस की बात है कि हम बनाते नहीं। क्योंकि हमारे पेट तो भरे रहते हैं। पर पेट भरे रहने से ही सब कुछ नहीं होता। हमें अन्य चीज़ों के लिए भी पैसा चाहिए। हमें हलुआ बेचना भी चाहिए।"

उन्होंने हलुआ बेचना शुरू कर दिया। हलुआ मीठा और स्वादिष्ट भी था। बाद में उन्हें पता चला कि जिसे जैसा पसंद होता था उसे यह हलुआ वैसा ही लगता था - इसलिए खूब बिका।

कड़ाही पकाती रही, पकाती रही।

"यह कड़ाही तो सोने की खदान है।" लड़की के पति ने कहा। "हमें डिब्बाबंद हलुआ फैक्ट्री शुरू कर देना चाहिए। हम डिब्बाबंद हलुए के खोके हर जगह भेजेंगे। इससे हम धनवान हो जाएँगे।"

यही किया गया। उन्होंने कड़ाही को दिन-रात गर्म रखकर हलुआ शहर, देश और विदेश में भेजना शुरू कर दिया। वे मालामाल होते गए।

उन्होंने पहले एक फैक्ट्री बनाई। फिर खुद के लिए एक महल बनवाया। उसमें हर तरह की सुविधा थी। गर्मी में ठंडा और ठंड में गर्म। पक्की छतें। संगमरमर का फर्श। उन्होंने अफगानी कालीन खरीदे और हरेक के लिए झूलेनुमा

कुर्सी, कश्मीरी गद्दे और चिकना फर्नीचर बनवाया। नए से नए फैशन के कपड़े सिलवाए। नरम तकिए भरवाए और हर चीज़ जो वे चाहते थे। जब महल छोटा पड़ने लगा, तो उन्होंने एक और बनवा लिया।

अब उन चारों के पास एक-एक गाड़ी भी थी।

जब उनके पास सब कुछ हो गया तो वे समय बिताने के लिए गोल्फ और ताश खेलने लगे। वे नाटक-सिनेमा वगैरह में जाते और कड़ाही को गर्म होते रहने के लिए छोड़ जाते। दो आदमी हलुए को डिब्बों में भरते और तीन आदमी उन्हें खोकों में जमाकर ट्रक पर चढ़ाते।

जल्दी ही उन्होंने एक घर मालाबार और एक कश्मीर में खरीदा। उन्होंने एक बंगला टिम्बकटू में खरीदा। उन्होंने एक प्लॉट अमरीका और एक इंग्लैण्ड में खरीदा।

और कड़ाही गर्म की गर्म रही। परन्तु एक दिन ऐसा आया जब दुनिया में हरेक के पास पर्याप्त हलुआ हो गया। एक दिन चारों बैठक में चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे और काजू कुतर रहे थे। अचानक कमरे में हलुआ भरने लगा।

सबसे पहले लड़की को अपनी पीठ पर कुछ गरम-गरम लगा। हलुए से दरवाज़ा भर गया था और अब यह खिड़कियों में से घुसने लगा था।

"कोई बात नहीं," लड़की ने कहा। "हम जादुई संकेत बोलेंगे और हलुआ बनना बन्द हो जाएगा।"

"तो बोलो", उसके पति ने कहा, "तुम्हीं बोलो, तुम्हारी कड़ाही है। जल्दी करो, मेरे जूते में हलुआ भरा जा रहा है।"

"बन्द हो जाओ कड़ाही", लड़की ने कहा। परन्तु यह सही संकेत नहीं था। "कड़ाही, कड़ाही बहुत हो गया।" परन्तु यह भी सही नहीं था।

जादुई संकेत इतना आसान था कि किसी को याद नहीं आ रहा था। न लड़की को, न माँ को, न बाकी दोनों को। पर कड़ाही हलुआ उगले जा रही थी।

क्या तुम्हें याद है ?

(एक जर्मन लोककथा पर आधारित)
मूल लेखक - जैनॉश
अंग्रेज़ी से अनुवाद : सुशील जोशी
चित्र : अमित सिन्हा

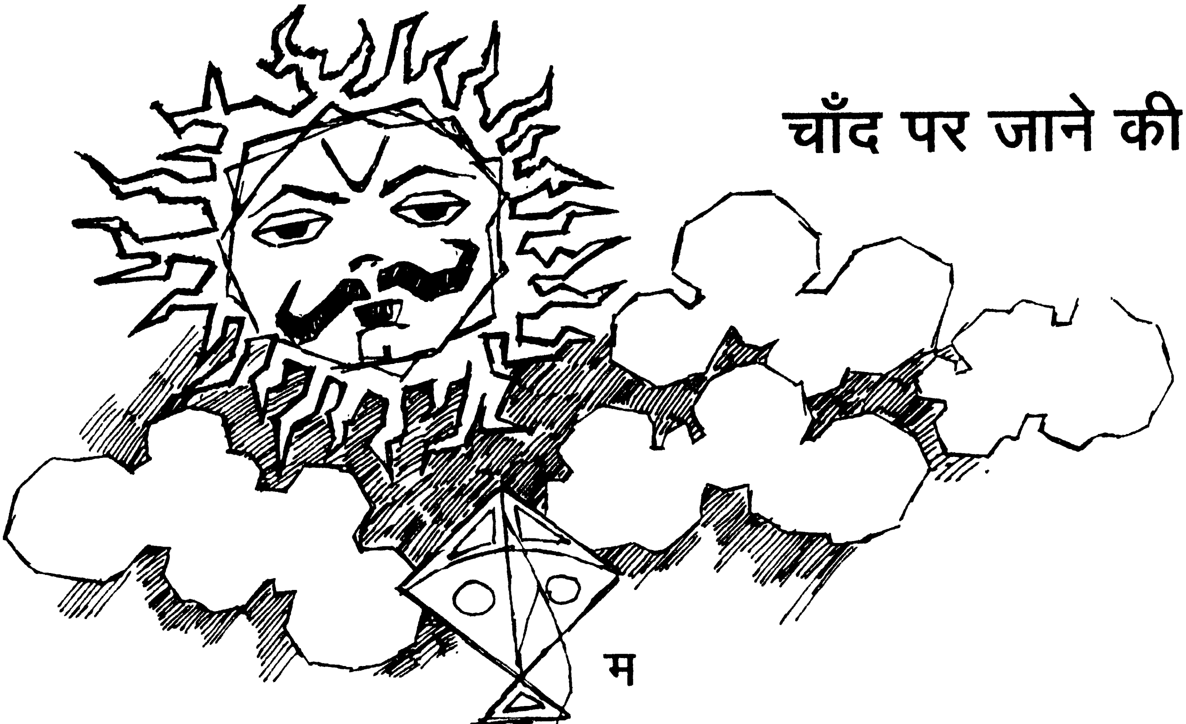

चाँद पर जाने की मटकू की तरकीब

मटकू सुधर गए
ठीक टाइम पर निकले घर से
ठीक टाइम घर गए।

भरी दोपहर छत पर पहुँचे
ऊँची उड़ी पतंग
सूरज बोला ये क्या मटकू भैया ये क्या ढंग!
रोको मुझसे टकराती है रोको जरा पतंग!!
इतराए मटकूजी सुनकर
और चढ़ गया रंग।

किरनें बोलीं मटकू भैया सूरज को छोड़ो
रुख अपनी नटखट पतंग का
कहीं और मोड़ो।

मटकू बोले : नहीं! नहीं!
सूरज भागे भले कहीं!!

बार-बार समझाने पर भी मटकू ना माने
किरनें झट ऊपर पहुँचीं सूरज को समझाने

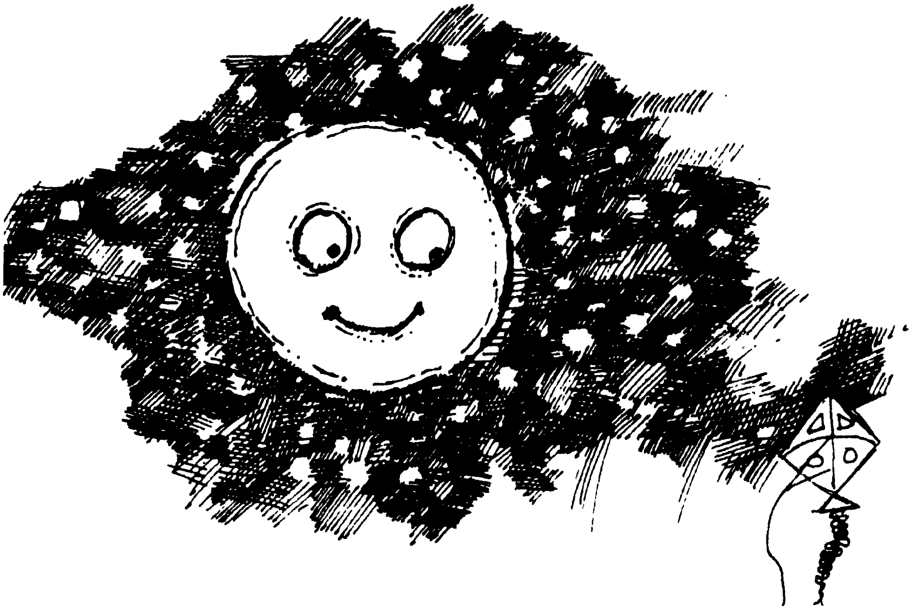

मटकू की पतंग से तुम टकराना ना!
हाथ जोड़ के सूरज बोला : ना-ना-ना!!

झपटी तभी पतंग
देख सूरज हटकर
आसमान में बहुत देर तो इधर-उधर
और थक गया जब
तो सीधा घर भागा।

सूरज के भगते ही छाया अँधियारा
खाली आसमान पाकर
हँसता हुआ भौंह मटकाता चाँद चला आया
उसके पीछे दबे पाँव तारे
निकले इकदम छिटक गए सारे।

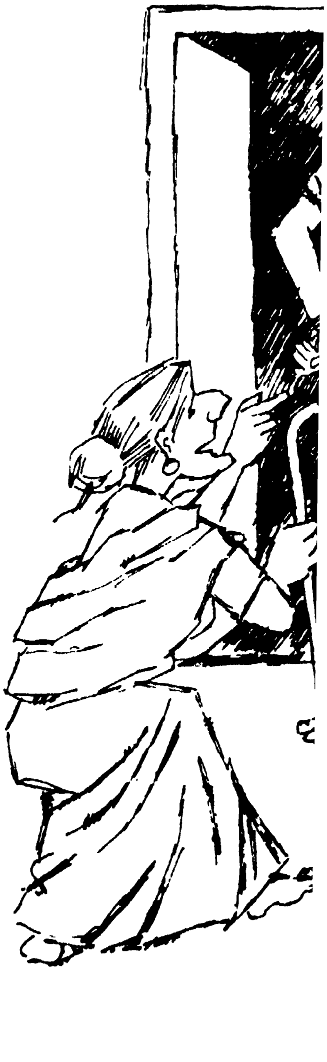

अभी धूप थी अभी रात हो गई
मटकू जी से बड़ी बात हो गई।
अब उनने थोड़ा इतराके
चाँद मियाँ में आँख गड़ाके
देखा बूढ़ी माई चरखा चला रही है
और इशारे से मटकू को बुला रही है।

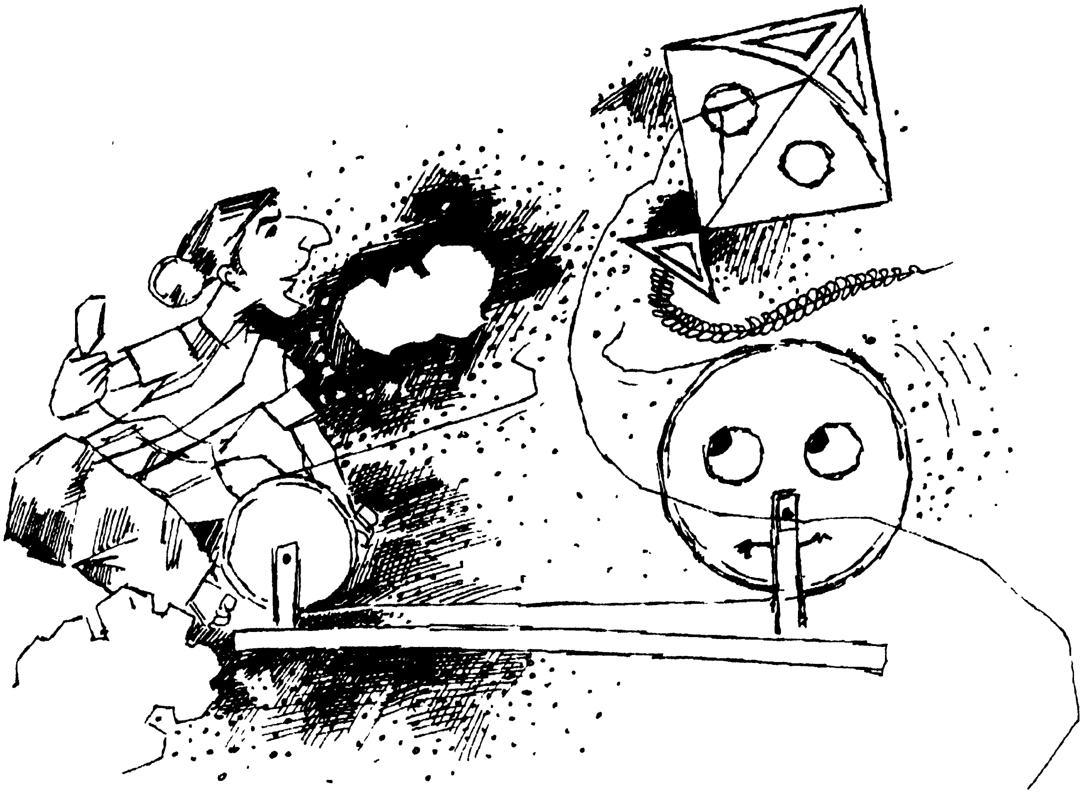

मटकू ने मोड़ी पतंग
ले गए चाँद के पास
पेंच लड़ाकर काट दिया चरखे का धागा
बिदका चाँद छिटककर भागा

बुढ़िया उठी तमककर बोली
रुक जा बेटा आती हूँ
तेरी इस करनी का मज़ा चखाती हूँ
इतना कहकर बुढ़िया बैठी एक किरन पर
उतर चली धरती की ओर
मटकू छोड़-छाड़ के भागे चरखी डोर
नीचे जाकर बैठ गए अम्मा के पास
पकड़ लिया आँचल का छोर।

धम-धम-धम धमकाती पहुँची बूढ़ी माई
अम्मा क्या जाने कि माई क्योंकर आई।
आकर बोली क्यों रे छोरे!
तूने क्यों काटा मेरे चरखे का धागा!

1952 के ओलम्पिक पर जारी डाक टिकट

थे। यह भी कहा जाता है कि खेल उत्सव यूनान के लोग उनके धार्मिक देवता जियस की शान में आयोजित करते थे। इसलिए जो इन खेलों में जीतता, उसे जियस मंदिर में लगे जैतून के फलों व पत्तियों का हार पहनाया जाता। कहने को इन खेल उत्सवों में सिर्फ एक 192 मीटर लम्बी दौड़ होती थी, जिसे स्प्रिंट-रेस कहा जाता था। लेकिन यूनानी लोग महीनों इन उत्सवों की तैयारी करते। वे दौड़ के लिए अपना-अपना काम करते हुए थोड़ा बहुत अभ्यास भी करते। फिर भी ये खेल शौकिया ही थे।

एक बार यह दौड़ जीती कोरियोबस ने! वह एक रसोइया था। उसके बारे में कहा जाता है कि वह ओलम्पिया में नौकरी करता था, और रहता था ओलम्पिया से पाँच किलोमीटर दूर एक गाँव में। अक्सर ओलम्पिया समय पर पहुँचने के लिए उसे दौड़ लगानी पड़ती। इस तरह दौड़ लगाते-लगाते अनजाने में ही उसने खूब अभ्यास कर लिया था। जब ओलम्पिया में खेल उत्सव हुए तो वह भी इन्हें देखने पहुँचा। वहाँ दौड़ के लिए लाइन लग रही थी तो वह पास ही खड़ा-खड़ा देख रहा था। भीड़ में धक्कामुक्की के चलते वह भी लाइन में पहुँच गया। और फिर दौड़ भी लिया। दौड़ में वह एक बड़े अन्तर से जीत भी गया।

कुछ सालों बाद यूनान पर रोम का कब्जा हो गया। पहले खेल उत्सवों को यूनानी शासक आर्थिक मदद दिया करते थे। रोम के शासकों ने यह मदद बन्द कर दी। बाद के कुछ रोमन शासकों, खासकर नीरो, ने इन्हें मदद भी दी और इन खेल उत्सवों के लिए एक लकड़ी का स्टेडियम भी बनवाया। खेल उत्सवों में रथदौड़ और घुड़दौड़ मुकाबले भी जोड़ दिए। ईनाम में जैतून के पत्तों के हार के अलावा धन भी दिया जाने लगा था। जो मुकाबला जीतता, उसका खूब सम्मान होता। पूरा यूनान उसे अपनी पलकों पर बिठाता।

कबर्टिन

कुछ सालों के बाद इन खेल उत्सवों पर फिर काली छाया पड़ी, जब रोम का शासक थियोडोसियस द्वितीय बना। उसके बारे में कहा जाता है कि वह बड़ा ही क्रूर और नास्तिक था। चूँकि यूनानी खेल उत्सवों का आधार देवता जियस था, इसलिए उसने इन खेल उत्सवों पर रोक लगा दी। लेकिन यूनानी लोग फिर भी इन खेल उत्सवों का आयोजन करते रहे। आखिर में उसने खेल स्टेडियम तो तुड़वाया ही, जियस मंदिर भी तुड़वा दिया। उसका गुस्सा यहीं खत्म नहीं हुआ। उसने ओलम्पिया की कई इमारतों को भी तुड़वा डाला। इसी दौरान एक भयानक भूकम्प आया, जिसने ओलम्पिया को बुरी तरह तबाह कर दिया। इस भूकम्प के बाद आई भारी बाढ़ ने सब कुछ मिटा दिया।

वर्षों बाद सन् 1829 में फ्रान्स और जर्मनी के कुछ पुरातत्ववेत्ताओं ने पेरिस में एक बैठक की। इस बैठक में ओलम्पिया की खुदाई को लेकर लम्बी चर्चाएँ हुईं। लेकिन खुदाई शुरू हुई 1876 में। और कुछ वर्षों में ही दुनिया का ध्यान एक बार फिर ओलम्पिया की ओर गया। कबर्टिन ने इन खेल उत्सवों के बारे

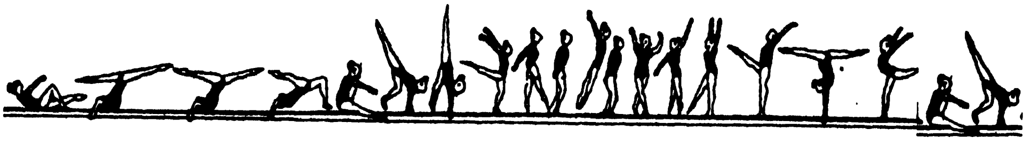

विशेष

खेलों का महाकुम्भ

ओलम्पिक

15 सितम्बर, 2000! क्या खास बात है इस तारीख में? कुछ याद आया! बिल्कुल ठीक, इसी तारीख से सत्ताईसवें ओलम्पिक खेल शुरू होंगे। इस बार ये खेल होंगे ऑस्ट्रेलिया के शहर सिडनी में। इस खेल उत्सव के लिए महीनों से सिडनी को सजाया जा रहा है।

पूरी दुनिया के बेहतरीन खिलाड़ी यहाँ इकट्ठे होंगे। अनुमान है कि दो सौ देशों के ग्यारह हज़ार खिलाड़ी इस ओलम्पिक में भाग लेंगे। 15 सितम्बर से 1 अक्टूबर तक यानी सोलह दिनों में विभिन्न खेलों के तीन सौ मुकाबले होंगे। हर खेल प्रेमी की आँखें सिडनी पर लगी होंगी। हर बार की तरह इस बार भी कितने ही चैम्पियन हारेंगे, नए चैम्पियन बनेंगे।

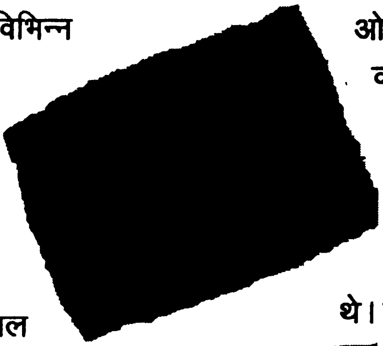

ओलम्पिक यानी जहाँ हर चार साल बाद अलग-अलग देशों के खिलाड़ी केवल खेल भावना को लेकर एकत्रित होते हैं। जहाँ रंग, जाति, धर्म और राजनीति को लेकर कोई फ़र्क नहीं होता। राजनीतिक रूप से कट्टर विरोधी देशों के खिलाड़ी भी वहाँ एक साथ होते हैं – दोस्ती का पैगाम लेकर।

कबर्टिन भी यही चाहता था। तुम सोचोगे ये जनाब बीच में कहाँ से टपक पड़े। तो चलो पहले कबर्टिन की गुत्थी ही सुलझाते हैं। कबर्टिन का पूरा नाम था 'बैरेन पियरे डी कबर्टिन'। वह फ्रांस का रहने वाला था। उसके माता-पिता का सपना था कि कबर्टिन या तो फौज में शामिल हो या फिर राजनीति के क्षेत्र में नाम कमाए। पर उसे तो बस शिक्षा और साहित्य में ही रूचि थी। और आखिर में उसने शिक्षा को ही अपने जीवन का लक्ष्य चुना।

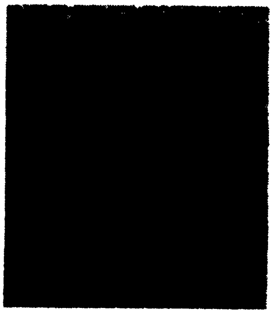

15 वें ओलम्पिक पर जारी डाक टिकट

कबर्टिन चौबीस साल का था, जब उसने एक किताब में यूनान के ओलम्पिया शहर के बारे में पढ़ा। यह शहर वर्षों पहले भयानक भूकम्प और बाढ़ की चपेट में आकर नष्ट हो गया था। पुस्तक ओलम्पिया की खुदाई के बारे में थी। कबर्टिन को ओलम्पिया के बारे में सब कुछ जान लेने का जुनून चढ़ गया। वहाँ की पुरानी सभ्यता, वहाँ की संस्कृति यानी लोग कैसे रहते थे। उनके रीति रिवाज क्या-क्या थे। वे कौन-कौन से त्यौहार मनाते थे। वह सब कुछ जान लेना चाहता था। ओलम्पिया की खुदाई अर्नेस्ट कर्टियस नामक पुरातत्ववेत्ता ने की थी। कबर्टिन को सबसे ज़्यादा प्रभावित किया, ओलम्पिया के खेल उत्सवों ने।

असल में ओलम्पिया यूनान का एक खुशहाल शहर हुआ करता था। वहाँ के लोग बड़े ही खेलप्रेमी थे। ओलम्पिया के एक छोर से एल्फीसिस नाम की नदी बहती थी। इसी नदी के तट पर एक लम्बा-चौड़ा घास का मैदान था। इसी मैदान पर ओलम्पिया के खेल उत्सव होते थे। वैसे ये खेल उत्सव यूनान के चार शहरों में होते थे। जिनमें ओलम्पिया भी था। इसीलिए लोग इन खेल उत्सवों को ओलम्पिक खेल भी कहते

1952 के ओलम्पिक पर जारी डाक टिकट

थे। यह भी कहा जाता है कि खेल उत्सव यूनान के लोग उनके धार्मिक देवता जियस की शान में आयोजित करते थे। इसलिए जो इन खेलों में जीतता, उसे जियस मंदिर में लगे जैतून के फलों व पत्तियों का हार पहनाया जाता। कहने को इन खेल उत्सवों में सिर्फ एक 192 मीटर लम्बी दौड़ होती थी, जिसे स्प्रिंट-रेस कहा जाता था। लेकिन यूनानी लोग महीनों इन उत्सवों की तैयारी करते। वे दौड़ के लिए अपना-अपना काम करते हुए थोड़ा बहुत अभ्यास भी करते। फिर भी ये खेल शौकिया ही थे।

एक बार यह दौड़ जीती कोरियोबस ने! वह एक रसोइया था। उसके बारे में कहा जाता है कि वह ओलम्पिया में नौकरी करता था, और रहता था ओलम्पिया से पाँच किलोमीटर दूर एक गाँव में। अक्सर ओलम्पिया समय पर पहुँचने के लिए उसे दौड़ लगानी पड़ती। इस तरह दौड़ लगाते-लगाते अनजाने में ही उसने खूब अभ्यास कर लिया था। जब ओलम्पिया में खेल उत्सव हुए तो वह भी इन्हें देखने पहुँचा। वहाँ दौड़ के लिए लाइन लग रही थी तो वह पास ही खड़ा-खड़ा देख रहा था। भीड़ में धक्कामुक्की के चलते वह भी लाइन में पहुँच गया। और फिर दौड़ भी लिया। दौड़ में वह एक बड़े अन्तर से जीत भी गया।

कुछ सालों बाद यूनान पर रोम का कब्जा हो गया। पहले खेल उत्सवों को यूनानी शासक आर्थिक मदद दिया करते थे। रोम के शासकों ने यह मदद बन्द कर दी। बाद के कुछ रोमन शासकों, खासकर नीरो, ने इन्हें मदद भी दी और इन खेल उत्सवों के लिए एक लकड़ी का स्टेडियम भी बनवाया। खेल उत्सवों में रथदौड़ और घुड़दौड़ मुकाबले भी जोड़ दिए। ईनाम में जैतून के पत्तों के हार के अलावा धन भी दिया जाने लगा था। जो मुकाबला जीतता, उसका खूब सम्मान होता। पूरा यूनान उसे अपनी पलकों पर बिठाता।

कबर्टिन

कुछ सालों के बाद इन खेल उत्सवों पर फिर काली छाया पड़ी, जब रोम का शासक थियोडोसियस द्वितीय बना। उसके बारे में कहा जाता है कि वह बड़ा ही क्रूर और नास्तिक था। चूँकि यूनानी खेल उत्सवों का आधार देवता जियस था, इसलिए उसने इन खेल उत्सवों पर रोक लगा दी। लेकिन यूनानी लोग फिर भी इन खेल उत्सवों का आयोजन करते रहे। आखिर में उसने खेल स्टेडियम तो तुड़वाया ही, जियस मंदिर भी तुड़वा दिया। उसका गुस्सा यहीं खत्म नहीं हुआ। उसने ओलम्पिया की कई इमारतों को भी तुड़वा डाला। इसी दौरान एक भयानक भूकम्प आया, जिसने ओलम्पिया को बुरी तरह तबाह कर दिया। इस भूकम्प के बाद आई भारी बाढ़ ने सब कुछ मिटा दिया।

वर्षों बाद सन् 1829 में फ्रान्स और जर्मनी के कुछ पुरातत्ववेत्ताओं ने पेरिस में एक बैठक की। इस बैठक में ओलम्पिया की खुदाई को लेकर लम्बी चर्चाएँ हुईं। लेकिन खुदाई शुरू हुई 1876 में। और कुछ वर्षों में ही दुनिया का ध्यान एक बार फिर ओलम्पिया की ओर गया। कबर्टिन ने इन खेल उत्सवों के बारे

में काफी खोजबीन की।

उस समय यानी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप में बहुत अशान्ति थी। फ्रांस लगातार युद्ध में फँसा हुआ था। फ्रांस की जनता बहुत दुखी थी। न सिर्फ फ्रांस बल्कि कई और छोटे-छोटे देश भी छोटे-छोटे स्वार्थों को लेकर आपस में लड़ते थे। एक युद्ध में बेवजह कितने ही लोग मारे जाते। लोग एक युद्ध के बाद सँभल भी नहीं पाते कि एक और युद्ध आ जाता।

कबर्टिन को लगा कि यदि किसी तरह इन खेलों को फिर से शुरू कर दिया जाए, तो शायद दुनिया में शांति, सद्भाव पनपने का माहौल बने ।

ओलम्पिक खेलों को फिर से शुरू करना आसान काम नहीं था। कबर्टिन ने इसके लिए सात साल लगाए। वह फ्रांस और जर्मनी के हर बड़े अधिकारी से मिला। हर जगह अपनी बात रखता। आख़िर में उसे फ्रांस में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अपनी बात रखने का मौका मिला। इस बैठक में उसने काफी विस्तार से बताया कि ओलम्पिक खेलों को फिर से शुरू क्यों किया जाना चाहिए। अन्त में उसने कहा, "अब समय आ गया है कि हम नाविक, धावक और तलवारबाजों का निर्यात करें। यही शांति और सौहार्द्र के लिए भविष्य का सच्चा व्यापार होगा। मुझे विश्वास है कि मेरे प्रस्ताव पर आप सहमत होंगे, यह दिन यूरोप के इतिहास में शांति दिवस के रूप में याद किया जाएगा। नए-नए देश जुड़ेंगे और हम सब और ज़्यादा मज़बूत होंगे।"

कबर्टिन के बनाए ओलम्पिक झण्डे से भी यह बात साफ़ झलकती है। जिसमें उसने सफेद आधार पर पाँच अलग-अलग रंगों के छल्ले बनाए। ये छल्ले एक दूसरे से जुड़े हैं। सफ़ेद रंग उसने इसलिए चुना, क्योंकि यह शान्ति को दिखाता है। पाँच अलग-अलग रंग के छल्ले पाँचों महाद्वीपों के हैं, जो अलग-अलग होकर भी जुड़े हैं। यही इन छल्लों का मतलब है।

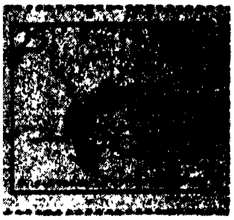

1964 के ओलम्पिक पर जारी डाक टिकट

कबर्टिन का प्रस्ताव सचमुच मान लिया गया। थोड़े ही दिनों में अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक कमेटी बन गई। कबर्टिन के अलावा तेरह और लोग चुने गए। इस चौदह सदस्यीय कमेटी को ही यह तय करना था कि इन आधुनिक ओलम्पिक खेलों का पहला आयोजन कहाँ हो। कैसे अधिक से अधिक देशों के खिलाड़ी इनमें भाग लें। खिलाड़ियों को चुनने के मापदण्ड क्या हों?

आख़िर में यह निर्णय लिया गया कि पहला आयोजन पेरिस में सन् 1900 में हो। यह 1894 की बात है। पर इस फैसले पर दो सवाल उठे। पहला

ओलम्पिक चिन्ह : सफेद झण्डे पर आपस में जुड़े पाँच छल्ले। इनका रंग - नीला, पीला, हरा, काला और लाल होता है। ये पाँच छल्ले - एशिया, अफ्रीका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका पाँच महाद्वीपों का प्रतीक हैं।

ओलम्पिक खेलों में पहला स्थान प्राप्त करने वाले को स्वर्ण पदक, द्वितीय को रजत पदक और तीसरा स्थान प्राप्त करने वाले को कांस्य पदक मिलता है। कुछ खेलों में चौथा स्थान प्राप्त करने वाले खिलाड़ी को भी कांस्य पदक मिलता है। चौथे से आठवें स्थान तक हर एथलीट को डिप्लोमा प्रमाण पत्र मिलता है।

ओलम्पिक का आदर्श वाक्य - अल्टियस, सिटियस, ग्रेटियस यानी "और तेज, और ऊँचा, और बल से"। इसे कबर्टिन ने रचा था।

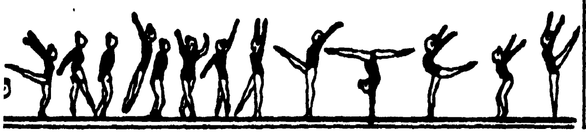

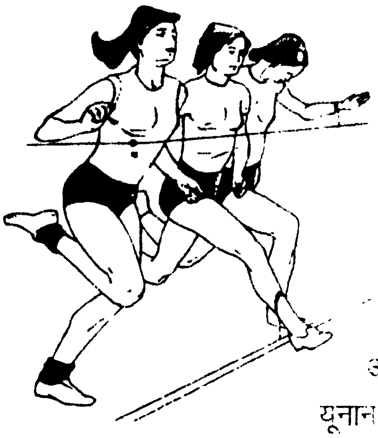

तो यह कि 1894 से 1900 तक, यानी छः साल का इन्तजार कुछ ज़्यादा ही लम्बा होगा! दूसरा ओलम्पिक खेल जब यूनान के प्राचीन खेल उत्सवों का ही आधुनिक रूप हैं तो इनका पहला आयोजन यूनान के ही किसी शहर में क्यों न हो। दोनों सवाल अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक कमेटी को जायज़ लगे। लेकिन फ्रांस के कुछ सदस्यों ने इसका विरोध भी किया। महीने भर बाद तय हुआ कि दूसरा आयोजन पेरिस में 1900 में हो। लेकिन इससे पहले 1896 में पहला आयोजन किसी यूनानी शहर में ही हो।

और इस तरह आधुनिक ओलम्पिक खेलों की शुरुआत यूनानी शहर एथेन्स से हुई।

यूनान के लोगों में खूब उत्साह था। खेलों को देखने भारी भीड़ आई। हालाँकि सिर्फ तेरह देशों के तीन सौ तेरह प्रतियोगियों ने भाग लिया। सभी खिलाड़ी पुरुष थे।

पहले ओलम्पिक खेल आयोजन का उद्घाटन यूनान के राजा जॉर्ज प्रथम ने किया। इसमें एथलेटिक्स के अलावा पर्वतारोहण, डबल, घुड़सवारी, मछली पकड़ना, गेंद पकड़ना जैसी रोमांचक और मनोरंजक प्रतियोगिताएँ हुईं।

इस पहले ओलम्पिक का आखिरी दिन आ गया। लेकिन किसी भी यूनानी ने कोई पदक नहीं जीता था। पूरे यूनान में शोक का माहौल था। आखिरी दिन 40 किलोमीटर लम्बी मैराथन दौड़ होनी थी। इस दौड़ में यूनानी धावक भी था। आखिरकार इस दौड़ में यूनान को पदक मिल ही गया। स्पिरिडन लुईस था वह धावक। यूनान के राजा से लेकर हर नगरवासी का नायक बन गया था वह। हर आदमी ने उसे अपनी सामर्थ्य के हिसाब से ईनाम दिया। एक यूनानी हज्जाम ने उसे जिन्दगी भर फ्री हजामत बनाने का वादा किया। एक कपड़ा व्यापारी ने उसे जिन्दगी भर कपड़े देने का वादा किया।

जैम्स कॉलोनी का किस्सा भी कम मज़ेदार नहीं है। जो हो वही जिसने प्रथम आधुनिक ओलम्पिक खेलों का पहला स्वर्ण पदक जीता था। जेम्स कॉलोनी ने ओलम्पिक में भाग लेने के लिए अपनी यूनीवर्सिटी से पंद्रह दिन की छुट्टी माँगी। यूनीवर्सिटी ने छुट्टी देने से इंकार कर दिया। मुश्किल सिर्फ इतनी ही नहीं थी। इसके बाद जब वह एथेन्स पहुँचने के लिए जहाज में यात्रा कर रहा था तब उसके सारे दस्तावेज चोरी हो गए। कॉलोनी को लगा कि अभी ओलम्पिक खेल शुरू होने में 12 दिन हैं तब तक कुछ हल निकल जाएगा। लेकिन उसे पता चला कि उसकी जानकारी गलत है और ओलम्पिक खेल अगले दिन से ही शुरू हो रहे हैं और तो और वह जिस प्रतियोगिता में भाग लेने वाला था उसी से इन खेलों की शुरुआत होने वाली थी। फिर भी इन सभी मुश्किलों को पार करके कॉलोनी ने ओलम्पिक खेलों में भाग लिया और स्वर्ण पदक जीता।

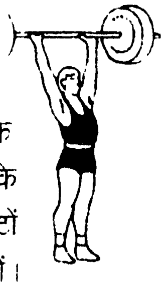

दूसरे ओलम्पिक खेल पेरिस में हुए। पेरिस के ये ओलम्पिक खेल आज तक अव्यवस्था के लिए जाने जाते हैं। इस ओलम्पिक में आखिर तक खिलाड़ियों को पता नहीं चल सका कि उनका क्या स्थान रहा। दर्शकों ने एथलीटों के रास्ते में तरह-तरह की बाधाएँ पैदा कीं।

फिर भी कुछ खिलाड़ियों के असाधारण प्रदर्शन ने दर्शकों को आश्चर्य में डाल दिया।

पेरिस ओलम्पिक में सबसे ज्यादा नाम कमाया जॉन ऐवरी ने। जॉन ऐवरी की टाँगें बचपन से कमजोर थीं। उसके चिकित्सक ने टाँगों और जाँघों को मज़बूत करने के लिए कुछ विशेष व्यायाम बताए। इन व्यायामों को करते-करते वह एक कुशल एथलीट बन गया। उसने 27 वर्ष की उम्र में खड़ी ऊँची और लम्बी कूद और फिर त्रिकूद में पदक जीते। उसने कुल दस पदक जीते थे, जिनमें से तीन स्वर्ण पदक थे।

इसी ओलम्पिक में भारत के नॉर्मन प्रिचार्ड नामक एथलीट ने 200 मीटर की बाधा दौड़ में रजत पदक जीता था। नॉर्मन प्रिचार्ड वास्तव में एक अंग्रेज था लेकिन वह उन दिनों भारत में रहता था, इसलिए उसने अपने को भारतीय खिलाड़ी के रूप में दर्ज करवाया था।

1972 म्यूनिख में हुए 20 वें ओलम्पिक में एक अप्रिय घटना घटी। जब 5 सितम्बर को लोग रंगारंग ओलम्पिक का मजा ले रहे थे कि कुछ फिलिस्तीनी छापामारों ने 11 इजरायली खिलाड़ियों को अगवा कर लिया। और कुछ ही दिनों बाद उन्हें मार डाला।

बाद के कुछ ओलम्पिक खेलों में भी अप्रिय घटनाएँ हुईं जैसे सियोल ओलम्पिक में कुछ एथलीट्स (खिलाड़ियों) ने दौड़ में शमिल होते समय ऐसी ड्रग (दवाएँ) लीं जिन्हें ओलम्पिक कमेटी द्वारा प्रतिबंधित किया गया था। बाद में उनसे पदक भी छीन लिए गए। इनमें सौ मीटर की दौड़ में पहला स्थान पाने वाला दौड़ाक बेन जॉनसन भी शामिल था।

इस सबके बावजूद ओलम्पिक खेल जारी हैं। हर ओलम्पिक में एक ज्योति जलाई जाती है। और इसे जलाने के लिए मशाल यूनान के जियस मंदिर से ही लाई जाती है। अपने रास्ते में पड़ने वाले तमाम देशों से होती हुई यह मशाल आयोजन स्थल पर पहुँचती है। ज्योति के प्रज्वलित होते ही ओलम्पिक खेल शुरू होते हैं।

हॉकी के जादूगर मेजर ध्यानचंद

ओलम्पिक खेलों में भारत

सन् 1928 में पहली बार भारत ने ओलम्पिक खेलों में भाग लिया और हॉकी का स्वर्ण पदक जीता। इसके बाद लगातार पाँच ओलम्पिक खेलों में भारत हॉकी का स्वर्ण पदक जीतता रहा। वास्तव में ओलम्पिक में भारत की पहचान केवल हॉकी से है। अब तक ओलम्पिक खेलों में भारत ने कुल 13 पदक जीते हैं। इनमें 11 पदक हॉकी के लिए हैं, शेष दो काँस्य पदक कुश्ती तथा टेनिस के लिए हैं।

बर्लिन ओलम्पिक (1936) में भाग लेने वाली भारतीय हॉकी टीम में मेजर ध्यानचंद भी थे। जब भारतीय टीम ने जर्मनी को 8-1 से हराया तो दर्शक चकित रह गए। क्योंकि ज्यादातर गोल ध्यानचंद ने ही किए थे। कुछ दर्शकों ने कहा कि उनके हाथ में हॉकी है या जादू की छड़ी। ध्यानचंद का खेल देखकर खुद हिटलर ने उन्हें अपने कक्ष में बुलाकर बधाई दी।

इसके बाद 1960 में सत्रहवें ओलम्पिक खेलों में भी भारत ने हॉकी में दूसरा स्थान प्राप्त किया। अठारहवें ओलम्पिक में भारतीय हॉकी टीम ने फिर अपनी धाक जमाई और पहला स्थान प्राप्त किया। उन्नीसवें और बीसवें ओलम्पिक में काँस्य पदक मिला

अब तक हुए ओलम्पिक खेल

पहला ओलम्पिक – वर्ष 1896, एथेंस (यूनान)
दूसरा ओलम्पिक – वर्ष 1900, पेरिस (फ्रांस)
तीसरा ओलम्पिक – वर्ष 1904, सेंट लुई (अमेरिका)
चौथा ओलम्पिक – वर्ष 1908, लंदन (ब्रिटेन)
पाँचवाँ ओलम्पिक – वर्ष 1912, स्टाकहोम (स्वीडन)
छठवाँ ओलम्पिक – वर्ष 1916, बर्लिन (जर्मनी) में होना था। लेकिन विश्वयुद्ध के कारण निरस्त।
सातवाँ ओलम्पिक – वर्ष 1920, एंटवर्प (बेल्जियम)
आठवाँ ओलम्पिक – वर्ष 1924, पेरिस (फ्रांस)
नौवाँ ओलम्पिक – वर्ष 1928, एमस्टर्डम (हॉलैण्ड)
10 वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1932, लॉस एंजिल्स (अमेरिका)
11 वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1936, बर्लिन, (जर्मनी)
12 वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1940, टोकियो (जापान) में होना था। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण रद्द।
13वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1944, लंदन (ब्रिटेन) में होना था। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण रद्द।
14 वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1948, लंदन (ब्रिटेन)
15 वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1952, हेलसिंकी (फिनलैंड)
16 वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1956, मेलबोर्न (आस्ट्रेलिया)
17 वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1960, रोम (इटली)
18 वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1964, टोकियो (जापान)
19 वाँ ओलम्पिक–वर्ष 1968, मैक्सिको सिटी (मैक्सिको)
20 वाँ ओलम्पिक–वर्ष 1972, म्यूनिख (पश्चिम जर्मनी)
21 वाँ ओलम्पिक– वर्ष 1976, मांट्रियल (कनाडा)
22 वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1980, मास्को (रूस)
23 वाँ ओलम्पिक–वर्ष 1984, लास एंजिल्स (अमेरिका)
24 वाँ ओलम्पिक–वर्ष 1988, सोल (दक्षिण कोरिया)
25 वाँ ओलम्पिक – वर्ष 1992, बार्सीलोना (स्पेन)
26 वाँ ओलम्पिक –वर्ष 1996, एटलांटा (अमेरिका)

मिल्खा

और फिर 1980 में मॉस्को ओलम्पिक में भारत ने आखिरी बार स्वर्ण पदक जीता था। तब से अब तक हॉकी में भारत कुछ खास नहीं कर पाया है। एथलेटिक्स में भी भारत का प्रदर्शन एक-दो बार को छोड़कर बिल्कुल फीका रहा है।

धावकों में उड़नसिख के नाम से मशहूर मिल्खासिंह अब तक भारत की तरफ से सबसे अच्छा प्रदर्शन कर पाए हैं। लेकिन ओलम्पिक में वे कोई भी पदक नहीं जीत सके। 1960 के रोम ओलम्पिक में वे सेकेण्ड के छोटे हिस्से से चूक गए और तीसरे नम्बर पर आते-आते रह गए।

1984 के लास एंजिल्स ओलम्पिक में उड़नपरी के नाम से मशहूर पी.टी. ऊषा भी 400 मीटर की बाधा दौड़ में सेकेण्ड के सौवें हिस्से से काँस्य पदक पाने से चूक गई थीं।

कुश्ती में भारत को अब तक एकमात्र पदक मिला है। यह पदक 1952 के हेलसिंकी ओलम्पिक में मिला था। जब के.डी. जाधव तीसरे नम्बर पर रहे थे।

हॉकी और कुश्ती के अलावा हमें सिर्फ टेनिस में एक पदक मिला है। यह पदक पिछले अटलांटा ओलम्पिक में मिला था। जब लिएण्डर पेस ने तीसरा स्थान प्राप्त कर कांस्य पदक जीता था। सिडनी ओलम्पिक में भी भारत भाग ले रहा है। देखना है हमारी क्या स्थिति रहती है।

● प्रस्तुति : सुशील शुक्ल

वर्ग पहेली - 110

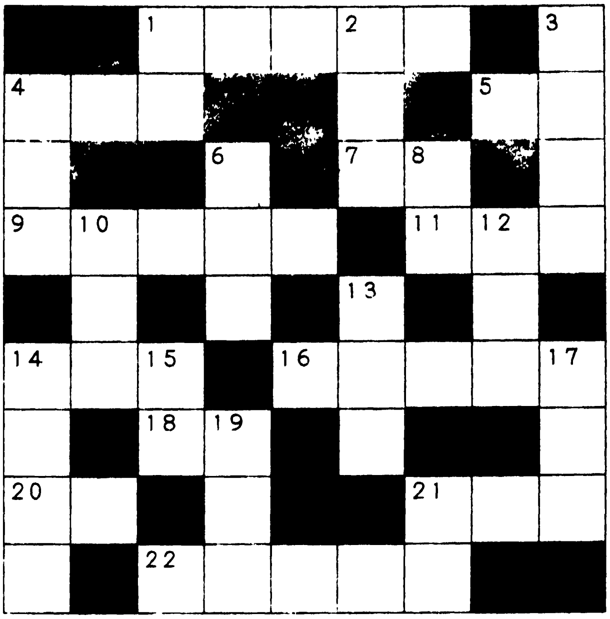

संकेत : बाएँ से दाएँ

1. एक 'पल वाहन' में है कुश्ती लड़ने वाला (5)
4. दुखी और उदास (3)
5. वाद्य यंत्र (2)
7. नाक में पहना जाने वाला गहना (2)
9. किसी कहानी का हीरो (5)
11. समुद्र में उठती है पानी की .... (3)
14. एक ...., सौ बीमार (3)
16. दोपहर वाला व्यक्ति जो असावधान हो (5)
18. एक डग की दूरी या कुल्हाड़ी, हल आदि का धारदार हिस्सा (2)
20. बायाँ (2)
21. मुँह से रस अन्दर खींचना (3)
22. जो हमेशा हरा-भरा रहे (5)

संकेत : ऊपर से नीचे

1. उपाधि, पैर और ओहदा भी (2)
2. गाड़ी (3)
3. काम या व्यवसाय, जिसकी आज कमी है (4)
4. कहना में है बिलावजह, बेकार में (3)
6. लय पाने में पैर में पहना जाने वाला आभूषण (3)
8. धरती (2)
10. सहारा देना या पकड़ना (3)
12. आटा, सूजी आदि का बनने वाला मीठा व्यंजन (3)
13. इसे सत् युग के बाद का समय कहा जाता है (3)
14. जो सामान्य न हो, (4)
15. .... दफा करना, एक मुहावरा जिसका अर्थ है किसी बात को दबा देना या जैसे-तैसे खत्म करना (2)
17. क्यूबा की राजधानी (3)
19. लम्बा पहनावा या चोगा (3)
21. किसी चीज के छोटे-छोटे टुकड़े (2)

अभिषेक तिवारी, छतरपुर, म.प्र. द्वारा भेजी गई वर्ग पहेली पर आधारित

वर्ग पहेली - 110 का हल चकमक के नवम्बर, 2000 अंक में छपेगा। हल भेजने के लिए वर्ग पहेली की जाली को चकमक से न काटें। संकेतों के नम्बर डालकर शब्द लिखकर भेज दें। सर्वशुद्ध हल भेजने वालों को चकमक का नवम्बर, 2000 का अंक उपहार में भेजा जाएगा।

चली चिरइया, कुद्दुम कुद्दुम!

बचपन में जब कोई बात सही होती थी, तब दादी के मुँह से हमेशा यही निकलता था. "अउक्का, नाइँ? जैसे हम लोग कहते हैं, "और क्या, नहीं?"

उन्होंने एक गीत सिखाया था। इसे गाकर हम बच्चे खेला करते थे और खूब खुश होते थे। इस खेल में कुछ बच्चे एक-दूसरे की ओर मुँह करके गोल दायरे में बैठ जाते थे। फिर गरम-गरम पूड़ी हाथ में पकड़कर उस पर घी चुपड़ने की एक्टिंग करके ताली बजाते हुए एक साथ गाना शुरू कर देते थे—

"तत्ती-तत्ती पुड़ियाँ,
घिया चुपड़ियाँ।
बाला माँगइ खिचड़ी,
कबूतर माँगइ दाना,
पकर लत्ती के कानइ-काना।"

यह लाइन कहने के बाद सभी बच्चे एक-दूसरे के कान पकड़ लेते थे। फिर इधर-उधर हिलते-झूमते यह कहने लगते थे -

"बकरिया को बच्चा, चेऊँ-मेऊँ,
चेऊँ-मेऊँ, चेऊँ-मेऊँ......"

कभी-कभी यह आवाज़ इतनी तेज़ हो जाती थी कि हमको पापा की डाँट भी खानी पड़ती थी। उनके द्वारा सिखाया गया एक गीत ऐसा भी है, जिसके अन्त में बगल में गुदगुदी मचा दी जाती है और रोने वाला बच्चा भी खिलखिलाकर हँसने लगता है।

सबसे पहले दादी अपने बाएँ हाथ से मेरी दाहिनी कलाई पकड़ लेती थीं। उसके बाद अपने सीधे हाथ के अँगूठे और उसके पास वाली ऊँगली से मेरे दाएँ हाथ की एक-एक उँगली को बारी-बारी से पकड़कर, उसे आगे-पीछे हिलाते हुए चिड़िया मानकर कहती थीं -

"जे कहइ, हमइँ भूख लगी।
जे कहइ, हम कहाँ से लइहीं?
जे कहइ, उधार लइ आवउ।
जे कहइ, हमइँ कउन दिही?
जे कहइ, हम जिहीं तउ कमाइ दिहीं,
जिहीं तउ कमाइ दिहीं!"

मेरे अँगूठे को हिलाने के बाद उनके हाथ की अँगूठे के पास वाली दोनों उँगलियाँ चिड़िया के पैरों की एक्टिंग करते हुए मेरी कलाई से आगे की ओर बढ़ने लगतीं। और सबसे बुजुर्ग चिड़िया यह कहते हुए कमाने के लिए निकल पड़ती कि यदि जिन्दा रही, तो कमा के दूँगी और दादी गाने लगतीं -

"चिर्रो चलती जाइँ, घुँघरू बजउती जाइँ।
चिर्रो चलती जाइँ, घुँघरू बजउती जाइँ!"

कभी-कभी ऐसे भी गाती थीं -

"चली चिरइया, कुद्दुम-कुद्दुम
चली चिरइया, कुद्दुम कुद्दुम!"

जैसे ही उनकी उँगलियाँ कोहनी के ऊपर वाले हिस्से तक पहुँचती, वे कहतीं, "जल्लाबाद आइ गओ। अब चिरइया आराम करिही।" जब शाहजहाँपुर और उसके आस-पास

के लोग गंगा नहाने के लिए फर्रुखाबाद की ओर जाते हैं तो रास्ते में एक स्थान जलालाबाद पड़ता है। मेरी गरदन अपने आप ही दाहिनी ओर झुकने लगती और गुदगुदी मचने से ठीक पहले जो हालत होती है, वैसी ही हालत मेरी भी हो जाती। इसके बाद जैसे ही उनकी उँगलियाँ मेरी बगल में पहुँचतीं, उनके यह कहने से पहले ही मुझे हँसी आने लगती-

"चिरिया आई, गंगा नहाई।
डुबकी खाई, गुद्दी पाई।
गुददी पाई, गुददी पाई...."

'गुददी पाई' या 'गुददी-गुददी' या 'गुल्लो-गुल्ली' कहते-कहते मेरे कमाल वाले गड्ढे में जब दादी की दोनों उँगलियाँ डुबकी लगातीं, तो मैं हँसते-हँसते लोटपोट हो जाता। हँसते-हँसते खेल खत्म हो जाता और दादी मुझे गोद में बैठा लेतीं। इसके बाद चिड़िया कहाँ गई? खुद ही सोच लो।

आज अपने रूठे हुए भाई को मनाने के लिए मैं भी उसके साथ यह चिड़िया वाला गीत गाकर खेलता हूँ। जब वह मान जाता है तो 'खन्ती-मन्ती' कराने के लिए भी जिद करता है। यह 'खन्ती-मन्ती' वाला गीत सुनाने के लिए मुझे लेटकर अपने दोनों पैर मिलाकर घुटनों से मोड़ने पड़ते हैं। इसके बाद जुड़े हुए पंजे पर पेट को बैठाकर ऊपर नीचे-झूला झुलाना पड़ता है। झूलते समय वह पेट के बल मेरी दोनों टाँगों पर आराम से लेटा, मुझे देखकर मुस्कुराता रहता है और मैं गाता रहता हूँ -

"खन्ती-मन्ती, खेल खिलन्ती
कौड़ी पाई, गंग बहाई
गंगा मइया बारू दीनी
बारू हमने भुर्जी को दई
भुर्जी ने हमइँ चबेना दओ
चबेना हमने घसियारे को दओ
घसियारे ने हमइँ घास दई
घास हमने गइअइ डारी
गइया ने हमइँ दूध दओ
दूध की हमने खीर बनाई
हमने खाई, तुमने खाई
नाना ने खाई, नानी ने खाई
बाबा ने खाई, दादी ने खाई
पापा ने खाई, मम्मी ने खाई
भइया ने खाई, दीदी ने खाई...
और धरी, पिटारे धरी
बची-खुची, सो कुत्तई डारी
बुढ़िया अपने बाली-बच्चा हटा
लई दिवाल उठिही
पुरानी दिवाल गिरिही-
धSSSSS धड़ाSSS म,
धSS धड़ाSSS म ..."

धSS धड़ाSSS म... कहते समय मैं उसके कन्धों को कसकर पकड़ लेता हूँ तथा उसकी इच्छा के अनुसार कई बार उसे दाईं और बाईं ओर गिराता तथा उठाता हूँ। कभी-कभी तो पूरा गीत दुबारा सुनाना पड़ जाता है।

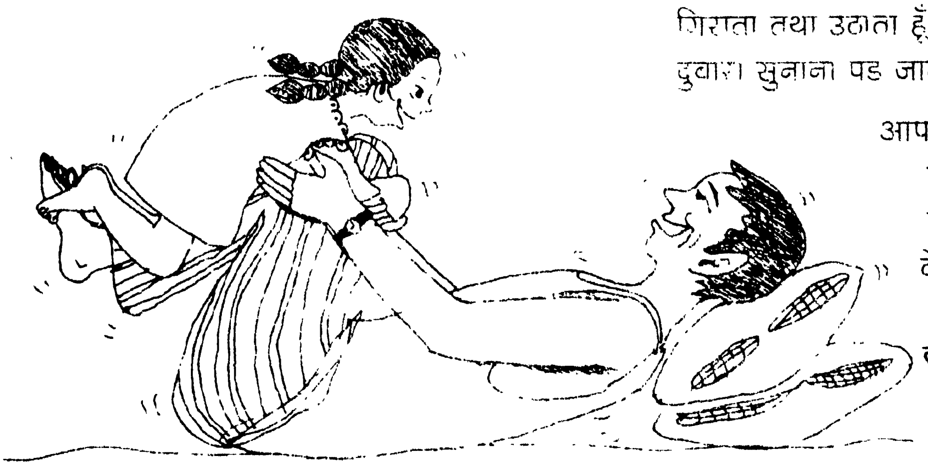

आप भी अपने छोटे भाई-बहिनों व दूसरे छोटे बच्चों के साथ ये गीत गाकर व खेलकर देखें। बड़ा मज़ा आएगा।

● रावेन्द्र कुमार 'रवि'
तल्लारामगढ़, नैनीताल, उ. प्र.

● चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

चिड़िया बनाओ

चिड़िया बनाने के लिए मोटा कागज़, पतला कागज़, कैंची, की ज़रूरत पड़ेगी।

सबसे पहले मोटे कागज़ पर चिड़िया की आकृति बना लो। फिर इस आकृति को काट लो।

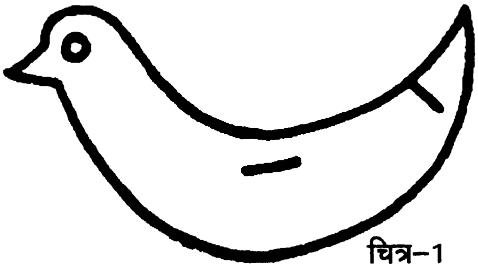

चित्र–1

इस आकृति में दो कट लगा लो, जैसे कि चित्र–1 में दिखाए गए हैं।

अब पतले कागज़ से पट्टियाँ मोड़ो। इसके लिए लगभग एक-एक सेंटीमीटर की पट्टी आगे-पीछे करके मोड़ो। उसी तरह जैसे पंखे के लिए मोड़ते हैं।

इस तरह के दो पंखे बनाओ। एक पंखा बड़ा होगा, दूसरा उससे थोड़ा छोटा।

अब इन पंखों को चिड़िया की आकृति में लगाए कट में से पिरोकर आधा इधर-आधा उधर कर दो।

बस चिड़िया तैयार है।

इस तरह की कई चिड़ियाँ तैयार कर लो। चिड़िया के बीचोंबीच जहाँ बड़ा पंख लगाया है एक छेद कर लो।

इस छेद में से धागा पिरोकर चिड़ियों को लटका लो।

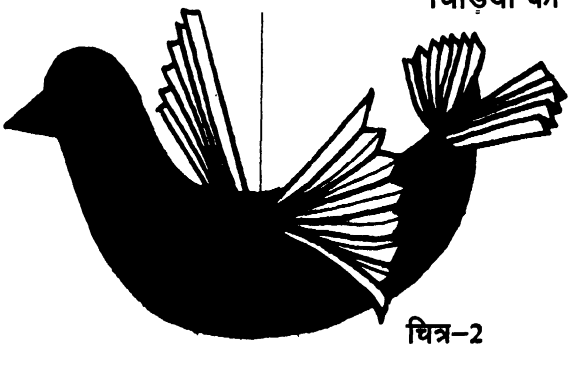

चित्र–2

प्यारा कुनबा

निकोलाई नोसोव

अब तक तुमने पढ़ा कि मीश्का हमेशा कुछ नया करना चाहता है। उसे मुर्गी-पालन नाम की एक किताब मिलती है। वह अपने दोस्त कोल्या के साथ इन्क्यूबेटर (मुर्गी के अण्डे को सेने वाली मशीन) बनाने की तैयारी करता है।

शुरू में कुछ अड़चनों को पार करने के बाद दोनों मिलकर गाँव से मुर्गी के ताज़े अण्डे लाते हैं। फिर इन्क्यूबेटर बनाने के लिए सामान की जुगाड़ भी कर लेते हैं। और फिर शुरूआत हो जाती है मुर्गी के अण्डों को सेने की। फिर जो इन्हें करना था वो था ताप को एक निश्चित डिग्री पर बनाए रखना। मीश्का और कोल्या बारी-बारी से सोते-जागते हैं। दोनों मिलकर अण्डों की देखभाल करते हैं। किताब में पढ़कर कोल्या अण्डों को पलटता है।

एक दिन उन दोनों के साथ पढ़ने वाला कोस्त्या, मीश्का के घर आता है, उसे इन्क्यूबेटर के बारे पता चल जाता है। फिर वे अण्डे पलटते हैं। इस बार पलटने में गड़बड़ी होने लगती है तो वे अण्डों पर नम्बर लिख देते हैं। अब आगे . . . .

माया ने हाथ बँटाया

"कैसे चल रहा है?" दूसरे दिन मीश्का से मिलने पर मैंने पूछा।

"ठीक है। बस, रात भर ताप फिर कम होता रहा।"

"तो क्या तुम कल रात भी नहीं सोए?"

"नहीं, अब मैं ज़रा होशियार बन गया हूँ। मैंने अपने तकिए के नीचे अलार्म घड़ी रख ली थी, जो मुझे हर तीन घण्टे बाद जगा देती थी।"

"लेकिन ताप क्यों कम हुआ? दिन भर तो वह बढ़ता ही रहा था," मैंने कहा।

"अब मुझे पता चल गया है," मीश्का ने कहा। "रात को ठण्ड अधिक रहती है, इसलिए इन्क्यूबेटर भी जल्दी ठण्डा पड़ जाता है। लेकिन दिन में गर्मी रहती है। और इसलिए दिन में ताप बढ़ता रहता है और रात में घटता है।"

"लेकिन इसका क्या इलाज करें?" मैंने उससे पूछा। हम जब तक स्कूल में रहेंगे, तब ताप की निगरानी कौन करेगा?

"शायद माया कर ले। हम उससे कहते हैं।"

मीश्का ने माया को बुलाया और उससे पूछा कि क्या वह हमारे स्कूल के समय इन्क्यूबेटर पर निगरानी रख लेगी।

"न भाई, न, यह काम मुझसे नहीं होगा," माया बोली। "कल ही तुम लोगों ने मुझे कमरे में से निकाल दिया था और अब मदद करने को कहते हो।"

"सुनो माया," मैंने कहा। "तुम यह तो नहीं चाहतीं न कि चूज़े मर जाएँ? लेकिन अगर हमने उनका ध्यान न रखा, तो वे मर जाएँगे और यही हालत तुम्हें दिए जाने वाले चूज़े की भी होगी। हम तुमसे अपनी मदद के लिए नहीं कह रहे हैं, लेकिन चूज़ों की तो मदद करो।"

मेरे कहने पर वह न नहीं कर सकी। इसके बाद मैंने उसको काम के बारे में समझा दिया।

"इस तापमापी को देखो," मैंने कहा। "पारा ठीक 39 डिग्री पर रहना चाहिए। 39 डिग्री। याद रहेगा?"

"हाँ, हाँ।"

लेकिन और निश्चित होने के लिए जिस जगह पारा टिका रहना चाहिए था, वहाँ मैंने लाल पेन्सिल से निशान लगा दिया।

"जाने दो यार, मैं चुप रहूँगा। लेकिन सुनो, मुझे और लड़कों को भी बताने दो, न?"

"अगर तुमने ऐसा किया, तो फिर कभी हमारे पास मत आना। तुमने इस बात को गुप्त रखने का वचन दिया था और अब तुम...."

"न भाई, न, मैं बिल्कुल चुप रहूँगा। लेकिन मुझे एक शानदार बात सूझी है। प्राकृतिक इतिहास के घण्टे में मैं मारीया पेत्रोव्ना को तुम्हारे इन्क्यूबेटर के बारे में बताऊँगा। वह बहुत खुश होगी।"

"ज़रा कहकर देखो तो! तुम मारीया पेत्रोव्ना से कहोगे, तो पूरी क्लास सुन लेगी।"

"ठीक है, नहीं कहूँगा। लो अब मैं मुर्दे की तरह खामोश रहूँगा।"

कोस्त्या अपने मुँह को हाथ से ढँककर वहाँ से चला गया। लेकिन साफ नज़र आता था कि हमारे इन्क्यूबेटर की बात किसी से कहने के लिए वह बैचेन हो रहा है।

पाठ शुरू हुए। लेकिन इन्क्यूबेटर की चिंता के मारे मीश्का से चुप बैठा नहीं जा रहा था।

"माया ने कुछ गलती कर दी, तो?"

"लेकिन वह कर क्या सकती है?"

"तापमापी को देखना ही भूल जाए।"

"लेकिन मैंने उसे सख़्त ताक़ीद कर दी है।"

"मान लो वह घर बैठे-बैठे ऊबकर बाहर खेलने चली जाए?"

"उसने वायदा किया है कि नहीं जाएगी।"

"देखो, गड़बड़ा मत देना," मैंने कहा। "पारा ज़रा-सा भी चढ़ा कि तुम फौरन लैंप के नीचे से एक कॉपी निकाल देना। जब लैंप नीचे होता है, तो पारा भी नीचे आ जाता है। समझी?"

"हाँ, समझ गई।" इसके बाद मैंने उसको यह दिखाया कि अण्डों को कैसे पलटा जाता है और कहा कि ग्यारह बजते ही उसे इन्क्यूबेटर खोलकर अण्डों को पलट देना चाहिए।

माया सारी बात समझ गई। फिर भी मैंने उससे सभी हिदायतें दोहराने के लिए कहा, जिससे भरोसा हो जाए कि उसने सब कुछ ठीक समझ लिया है। इसके बाद मीश्का और मैं स्कूल चले गए।

"कहो, कैसा चल रहा है तुम्हारा इन्क्यूबेटर?" क्लास में प्रवेश करते ही कोस्त्या ने पूछा।

"शू–उ–उ," किसी ने सुन तो नहीं लिया, यह देखने के लिए उसके कंधे पर से दृष्टि डालते हुए मीश्का फुसफुसाया।

"मैं तो फुसफुसाया था।"

"फुसफुसाया था!" मीश्का गुर्राया। "तुम तो ज़ोर से चीख रहे थे।"

"और अगर उसने इन्क्यूबेटर में रखी अपनी कटोरियाँ ले लीं, तो?"

"वह ऐसा कुछ नहीं करेगी।"

"हो सकता है, बल्ब ही खराब हो जाए। तो फिर हम क्या करेंगे?"

प्राकृतिक इतिहास के घण्टे में मीश्का ने इतनी बातचीत की कि मारीया पेत्रोव्ना ने हमें अलग कर दिया। क्लास की दूसरी ओर से मुझे घूरता हुआ मीश्का बरसाती बादल के समान बैठा था। और मानो मामले को अधिक बिगाड़ देने के लिए ही कोस्त्या अपने मुँह पर हाथ रखकर ज़ोर से फुसफुसाया–

"ऐ! तुम्हारे इन्क्यूबेटर के बारे में मैं मारीया पेत्रोव्ना को बता रहा हूँ।"

मीश्का अपनी जगह पर ही बल खाते-खाते फुसफुसाया, "दगाबाज! चुगलखोर!!"

लेकिन तब तक कोस्त्या अपना हाथ ऊपर उठा भी चुका था।

"क्या कोस्त्या?" मारीया पेत्रोव्ना ने पूछा

मीश्का ने कोस्त्या की ओर तना हुआ घूँसा दिखाया।

"मारीया पेत्रोव्ना, इन्क्यूबेटर क्या होता है?" कोस्त्या ने सरल भाव से पूछा।

मारीया पेत्रोव्ना ने इन्क्यूबेटर की जानकारी देना शुरू किया। उन्होंने कहा कि बहुत-बहुत पहले लोगों ने अण्डों को एक ख़ास दरजे तक गरमाकर बिना मुर्गियों के चूज़े निकालना सीख लिया था। दो हज़ार वर्ष पहले प्राचीन मिस्र तथा चीन में भी इन्क्यूबेटर थे। पुरातत्वविदों को प्राचीन मिस्र के लोगों द्वारा बनाए गए इन्क्यूबेटर मिले हैं। बेशक, वे बहुत बड़े थे और उनमें एक साथ कई हज़ार अण्डे सेये जा सकते हैं।"

"मेरी जान-पहचान के दो लड़कों ने खुद ही इन्क्यूबेटर बनाया है," कोस्त्या बोला। "क्या आपके ख्याल में वे अण्डों से चूज़े निकाल सकेंगे?"

"घरेलू इन्क्यूबेटरों से भी हम चूज़े निकाल सकते हैं," मारीया पेत्रोव्ना ने उत्तर दिया। "लेकिन यह बड़ा कठिन काम है। कारखाने में बने इन्क्यूबेटर में ताप तथा नमी को ठीक रखने के तरह-तरह के साधन होते हैं, लेकिन घरेलू इन्क्यूबेटरों की बड़ी देखभाल करना पड़ती है। अगर तुम्हारे मित्रों में लगन और धीरज है, तो वे सफल होंगे। लेकिन अगर वे हमारे मीशा और कोल्या की तरह है, तो मुझे डर है कि कुछ भी हाथ नहीं आएगा।"

"क्यों?" मीश्का यकायक बोल उठा।

"क्यों तुम तो कक्षा में भी ठीक तरह नहीं रहते हो और पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते हो," मारीया पेत्रोव्ना ने कहा और फिर पढ़ाने लगीं।

उस दिन हम स्कूल से बाहर आ रहे थे कि वीत्या स्मिर्नोव ने लपककर हमें पकड़ लिया और कहा कि प्रकृति-प्रेमी मंडल में काम करने की आज हमारी पारी है।

"अरे नहीं, आज हम काम नहीं कर सकते," मीश्का ने बेचैन होकर कहा। "हमारे पास ज़रा भी समय नहीं है।"

"तुम्हारे पास तो कभी भी कुछ करने को समय नहीं होता। अगर तुम्हें कभी आना ही नहीं था, तो तुम मंडल में शरीक ही क्यों हुए? आजकल बसंत है। यही तो डटकर काम करने के दिन हैं। हमें पंछी-घर तैयार करना है।"

"हम बाद में पंछी-घर तैयार करेंगे।"

"लेकिन पंछी तो अब आना शुरू करने ही वाले हैं।"

"नहीं, वे नहीं आएँगे।"

"क्या मतलब? तुम्हारे ख्याल में पंछी तुम्हारा इन्तज़ार करेंगे?"

"हो सकता है, ज़रा देर इंतज़ार ही करें।" मीश्का बोला।

हम हाँफते हुए घर आए। खैर यह थी कि सब कुछ ठीक था। बल्ब खराब नहीं हुआ था और ताप बिल्कुल ठीक था। इन्क्यूबेटर के पास माया अपनी जगह पर बैठी थी। हमने उसको शाबाशी दी और उसे सैर करने भेज दिया।

(अगले अंक में जारी)

सभी चित्र : सौरभ दास

अगस्त 2000 अंक के माथापच्ची के हल

1. कभी नहीं।

3. समीकरण होगा – 99 + 9 = 9 दर्जन।

4.

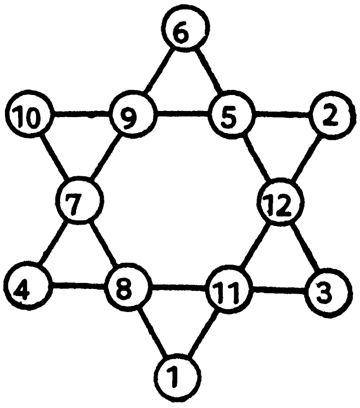

5. 66

6.

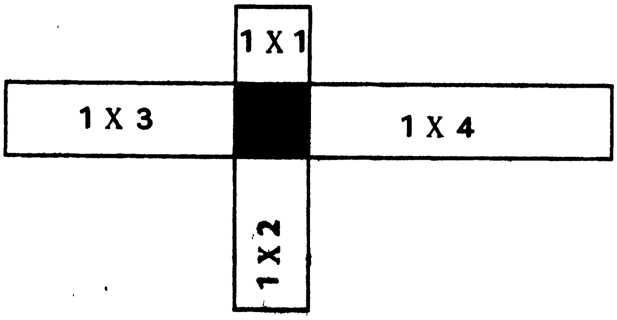

7. ? की जगह 63 आएगा।

8. 4/3 को चाहे 4 से गुणा करें या जोड़ें, हल एक ही आएगा।

वर्ग पहेली 108 का हल

अ		प	द	म		अ	ग	र
म	शा	ल		ख	ली		ल	
न		क		म		पी	त	ल
	सा		स	ली	का			ल
आ	फ	ता	ब		य	का	य	क
सा			को	य	ल		श	
न	ज़	र		ज		रि		अ
	मी		सी	मा		वा	रि	स
स	न	द		न	वा	ज़		र

वर्ग पहेली 108 के सही हल भेजने वाले हैं – खुरशीद अनवर राही, जावद, नीमच और चम्पालाल कुशवाहा, हिरनखेड़ा, होशंगाबाद, म. प्र.। इन्हें सितम्बर, 2000 का अंक भेजा जा रहा है।

With Best Compliments From :

M/s. HINDALCO INDUSTRIES LIMITED
(FOIL DIVISION)

Ahura Centre, 1st Floor
82 - Mahakali Caves Road
Andheri (East)
Mumbai - 400 093

TEL. No. 8307135/136/137
FAX No. 8307124

माथापच्ची

(1)

इन छह चित्रों में एक अलग है।
उसे पहचानो।

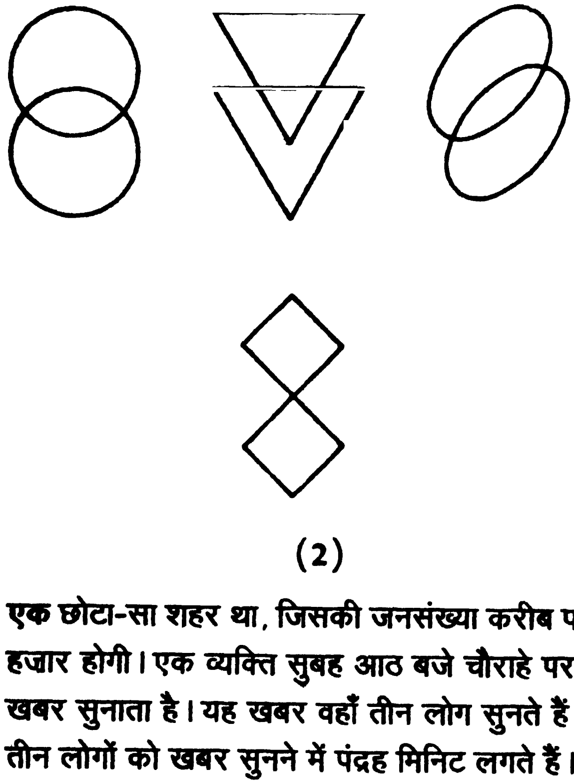

(2)

एक छोटा-सा शहर था, जिसकी जनसंख्या करीब पचास हजार होगी। एक व्यक्ति सुबह आठ बजे चौराहे पर एक खबर सुनाता है। यह खबर वहाँ तीन लोग सुनते हैं। इन तीन लोगों को खबर सुनने में पंद्रह मिनिट लगते हैं। बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। ये तीन लोग भी तीन-तीन अन्य लोगों को यह खबर बताते हैं। हाँ समय उतना ही लगता है, पंद्रह मिनिट। यह सिलसिला चलता रहता है। हर खबर पाने वाला, अगले पंद्रह मिनिट में तीन नए लोगों को खबर देता है।

जरा हिसाब तो लगाओ कि पूरे शहर को खबर पहुँचाने में कितना समय लगा होगा?

(3)

एक आदमी ने एक बक्से में कुछ झींगुर और मकड़ियाँ बन्द कर रखीं हैं।

जब उससे उनकी अलग-अलग संख्या पूछी तो उसने बस इतना बताया कि दोनों तरह के जीवों के कुल 54 पैर हैं। इस जानकारी से दोनों की अलग-अलग संख्या पता करना कोई मुश्किल काम नहीं है। है न

(4)

देखो शोर मत करना। वरना इन सुअर महाराज की नींद टूट जाएगी.. और फिर ये जो सपना देख रहे हैं वह भी नहीं देख पाएँगे। ये सपने में एक माथापच्ची हल कर रहे हैं। ये जो चित्र तुम देख रहे हो वह 9 रेखाओं से बना है। इनमें से कोई भी दो रेखाओं को उठाकर इस तरह जमाओ कि नई आकृति में एक समान माप के तीन वर्ग बनें।

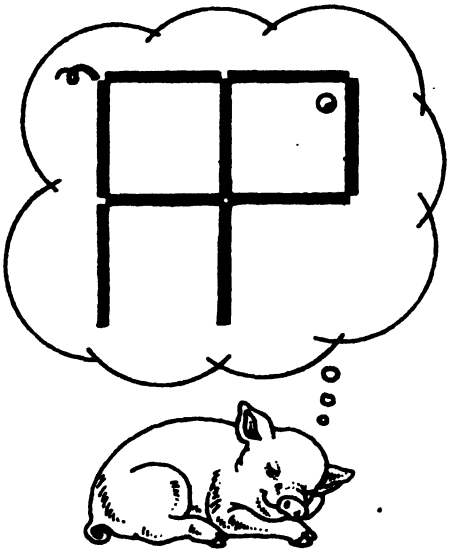

(5)

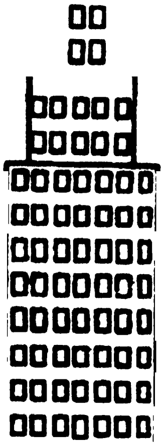

देखो तो कितनी ऊँची मीनार है यह। इसकी ऊँचाई के बारे में बस हमें इतना ही मालूम है कि वह इसकी आधी ऊँचाई से 225 मीटर ज्यादा है। क्या तुम पता लगाकर बताओगे इसकी ऊँचाई ?

(6)

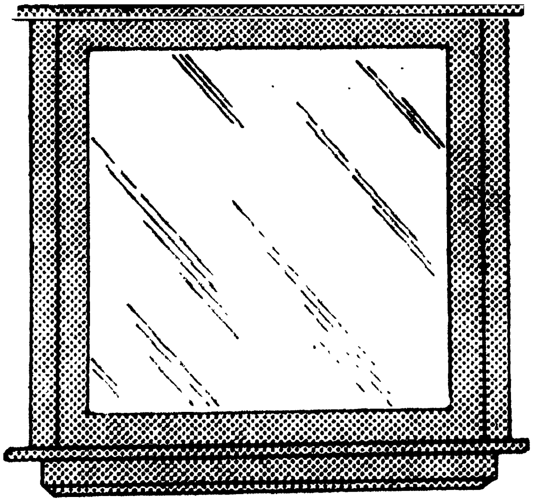

यह मेरे घर की खिड़की है – सात फुट लम्बी और सात फुट चौड़ी। मैं इसके आधे भाग में नीला रंग करना चाहता हूँ। मगर साथ ही यह भी चाहता हूँ कि बाकी बचे भाग की लम्बाई और चौड़ाई बराबर हो, यानी वह वर्ग हो। क्या तुम मेरी मदद कर सकते हो?

(7)

तीन ऐसे अंक ढूँढो जिनको आपस में जोड़ें या फिर गुणा करें, हल एक-सा ही आएगा।

(8)

चलो अब कुछ गुणा-भाग किया जाए।

12 × 483 = 5796

48 × 159 = 7632

इस गुणा में क्या खास नज़र आ रहा है। जी हाँ! इनमें 1 से लेकर 9 तक के सभी अंक हैं। तुम ऐसे कितने और उदाहरण ढूँढ सकते हो?

(9)

ये है 4 गोलों और 4 सीधी रेखाओं से बनी आकृति। और इसके नीचे रखी हैं आठ गोटियाँ। इन गोटियों को उठाकर इस आकृति में जमाना है। अरे तुम तो शुरू ही हो गए। भई ज़रा ये शर्त भी तो सुन लो। कि हर गोले में और हर सीधी रेखा में कम से कम दो गोटियाँ ज़रूर हों।

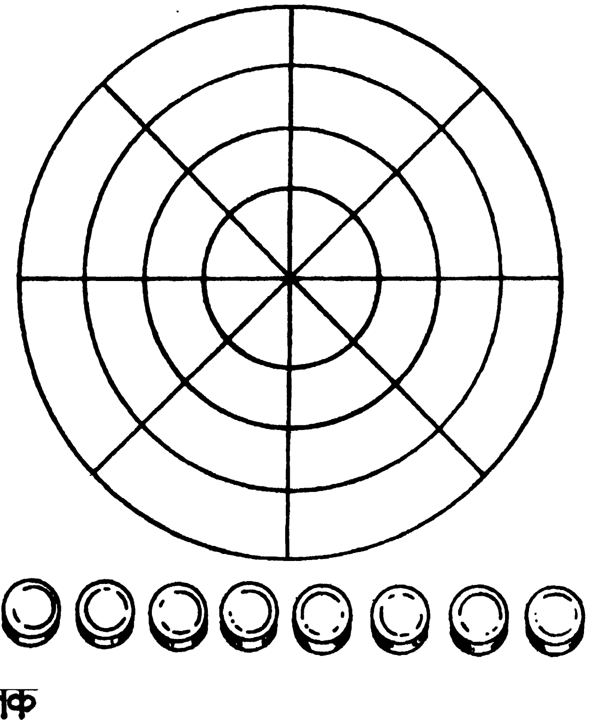

खेल खेल में : कला

अपने आसपास के वातावरण को देखो – प्रकृति ने ढेर सारी सामग्री बिखेरकर रखी है। यह सामग्री दिखाई तो देती है, परन्तु देखने का प्रयास कम होता है। दिखाई देना तो एक स्वाभाविक बात है परन्तु देखना या निरीक्षण या अवलोकन करने में प्रयास की आवश्यकता होती है (प्रयास, यानी उस चीज़ के नज़दीक जाना, उसके सारे पहलुओं से उसे निहारना, टटोलना, उसके साथ खेलना)। इस प्रकार के निरीक्षण, के द्वारा किसी भी चीज़ की विशेषता, उसके गुणधर्म तथा उसकी उपयोगिता समझ में आती है और अपनी मानसिकता या समझ के अनुसार प्रेरणा देती है। और इसी कल्पना की सहायता से निर्माण-सर्जन होता है। बड़े-बड़े आविष्कार भी तो ऐसे ही हुए हैं, चाहे वह विज्ञान के हों या किसी अन्य विषय से सम्बंधित।

हम तो चाहते हैं कि तुम भी इस प्रकार अपने आसपास की प्राकृतिक सामग्री इकट्ठा कर कुछ बनाने का प्रयास करो। बाजार के महँगे साधनों पर निर्भर रहने की अपेक्षा यदि अपने आसपास ही सहज रूप से मिलने वाली चीज़ों के साथ खेलो तो तुम्हें एक नई दृष्टि-नजर भी मिल जाएगी और प्रकृति के साथ नया रिश्ता जुड़ जाएगा।

और, यह काम कोई मुश्किल भी नहीं है। तुम्हें जब कभी कोई रंगीन आकर्षक फूल, पंखुड़ी या पत्ती दिखाई दे तो उसे अपनी किताब, कापी या डायरी में दो कागज़ की परतों में दबाकर रखो। कुछ दिनों बाद वह अपने आप सूखकर आकार बना लेगा। फिर ऐसे बने हुए आकारों की अलग-अलग ढंग से जमावट करते रहो। यह जमावट ही हर बार चित्र बनाती रहेगी। जो जमावट पसंद आए उसे कागज़ पर लेई, गोंद या फेविकोल से चिपका दो। निरन्तर प्रयास करते रहने पर अपने आप कुशलता बढ़ जाएगी।

यहाँ तुम कुछ मज़ेदार आकृतियाँ देख रहे हो। इनमें ऐसी ही कुछ बात है जो तुम 'खेल-खेल में' स्तम्भ में देखते-पढ़ते हो।

ये ऐसी चीज़ों से बनी हैं जो हमारे आसपास के आँगन में, बाग-बगीचों में हमेशा दिखाई देती हैं, जैसे सूखी पत्तियाँ, फूल, फलियाँ, गुठलियाँ और कबाड़ा आदि; जिन्हें हम बेकार की चीज़ें मानकर उनकी ओर ध्यान नहीं देते। इन्हीं चीज़ों को बटोरकर उनके आकार और रंगों के अनुरूप सँवारकर इस ढंग से जमाया या चिपकाया गया है कि अपने आप ही मज़ेदार आकृति बन गई।

वैसे जब कोई अजीब-सी चीज़ हमें दिखाई देती है तो हमारा ध्यान उसकी ओर जाता ही है, और उसे पाने की इच्छा भी होती है। हममें से कुछ तो उन्हें बटोरकर इकट्टा भी करते हैं, लेकिन उन्हें व्यवस्थित रूप न दे पाने की हालत में वे केवल अटाला ही बनकर रह जाती हैं।

इन चित्रों को यहाँ देने का मतलब यही है कि किस प्रकार अटाले से ही चित्र, खिलौने या और भी उपयोगी वस्तुएँ तुम खुद बना सकते हो। वैसे तो हरेक के मन में कुछ न कुछ बनाने की, करने की इच्छा स्वाभाविक रूप से होती है, परन्तु उचित सामग्री और महँगे साधनों की कमी या उन्हें पाने की सामर्थ्य न होने के कारण निराशा होती है। परन्तु निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

● विष्णु चिंचालकर

(चकमक जुलाई, 87 से)

खाओ नारियल, बनाओ मेंढक।

आम के आम और गुठलियों से सूअर।

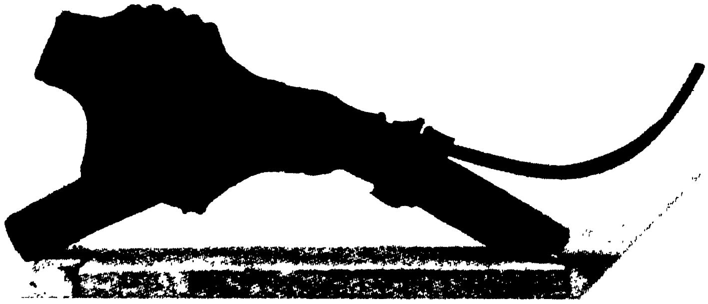

स्कूटर के टूटे हेंडिल से बना शेर।

झोले में बाबा - फोटो के.आर. शर्मा

गुरुजी की कलाकृतियों के चित्र श्री दिलीप चिंचालकर के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं। छायाकार हैं- निहालचंद जैन

12578